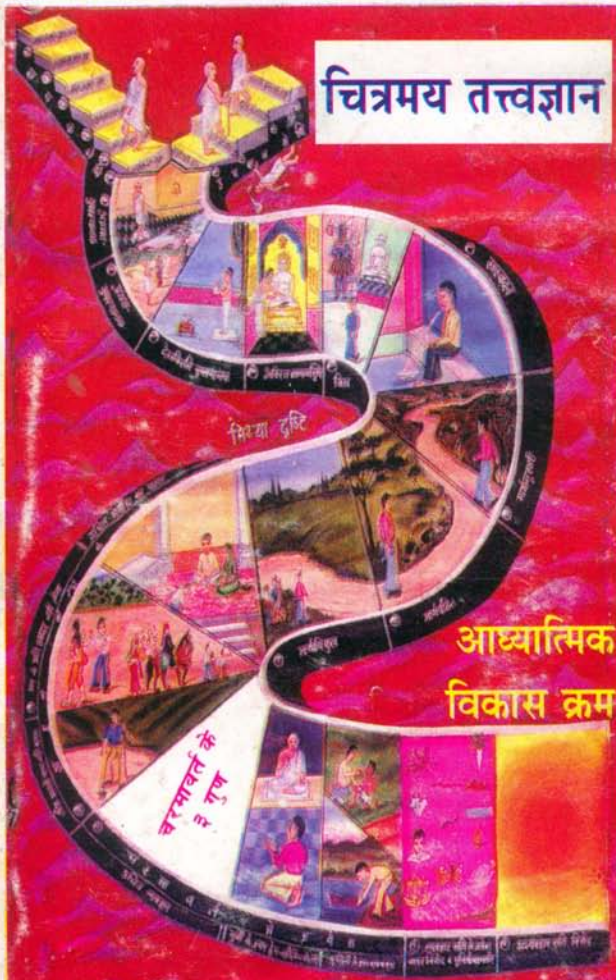


चित्रमय तत्त्वज्ञान



गुणरत्नसूरीश्वरजी म. सा.

चित्रमय तत्त्वज्ञान



: लेखक :

द्विशताधिक दीक्षादानेश्वरी

प.पू.आचार्यदेवश्री गुणरत्नसूरीश्वरजी म.सा.

: प्रकाशक :

जिनगुण आराधक ट्रस्ट

१५, पहली मंजिल, गुलालवाडी, कीका स्ट्रीट

मुंबई - ४, फोन : ३४७४७९१

मूल्य : ५० रुपये

चित्रमय तत्त्वज्ञान

लेखक परिचय

परम पूज्य सिद्धान्त महोदधि कर्मसाहित्यनिष्णात आचार्यदेवश्री विजय प्रेमसूरीश्वरजी म.सा. के पट्टालंकार वर्धमान तपोनिधि आचार्यदेवश्री विजय भुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा. के पट्टधर सिद्धान्त दिवाकर सुविशाल गच्छाधिपति श्री आचार्यदेवश्री विजय जयघोषसूरीश्वरजी म.सा. के आज्ञावर्ती प.पू. मेवाडदेशोद्धारक महातपस्वी आचार्यदेवश्री विजय जितेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. के सुशिष्य द्विशताधिक दीक्षादानेश्वरी - युवक जागृतिप्रेरक आचार्यदेवश्री विजय गुणरत्नसूरीश्वरजी म.सा.

प्रकाशन में विशिष्ट सहयोगी

परम पूज्य बयोवृद्ध साध्वीजी पुष्पलताश्री जी.म. की सुशिष्या प्रवर्तिनी साध्वीजी पुण्यरेखाश्रीजी म. की सुशिष्या साध्वीजी दर्शितरेखाश्रीजी म. की प्रेरणा से दीक्षार्थी पिकी कुमारी (हाल साध्वीजी समर्पित रेखाश्रीजी म.) हस्ते वडगाम वाला सांकलचंदजी हंजारीमलजी कोठारी

सं. २०५८ ई.सन् २००२ प्रथम संस्करण ७५० हिन्दी



:- मुद्रक :-

सिद्धचक्र ग्राफिक्स

ए/११५, बी.जी.टावर, पहेलो माल, दिल्ली दरवाजा बहार,
शाहीबाग रोड. अमदाबाद-४,

Ph.: (O) (079) 5620579, (R) 6641223

चित्रमय तत्वज्ञान

लेखक के दो शब्द

इस युग में चारों ओर पश्चिमी वातावरण की धूम मची है। इसलिये भौतिकवाद दिन दुगुना रात चौगुना बढ़ता जा रहा है और आत्मवाद भूलाता जा रहा है। ऐसी स्थिति में युवा पीढ़ी का लगाव आत्मतत्व आदि की ओर बढ़ाने के लिये २-३ आर्टिस्टों को मार्गदर्शन देकर ३० वर्ष पहले कई चार्ट बनवाये गये थे।

आज के युवक - युवतियों को चित्रमय साहित्य ज्यादा आकर्षण करता है। एवं रुचिकर भी बनता है। क्योंकि अेक चित्र हजार शब्दों से भी ज्यादा प्रभावशील रहता है। अंग्रेजी में कहावत है कि One picture is worth than thousand words. यद्यपि १६-१७ वर्ष पहले आध्यात्मिक शिक्षण केन्द्र ने १७ चित्र ओफसेट प्रेस में चार रंग में छपवा दिये थे। परंतु विश्वप्रकाश पत्राचार पाठ्यक्रम, दीक्षा, प्रतिष्ठा आदि कार्यों में व्यस्त होने से इन चित्रों के विवेचन का मेटर तैयार न हो सका।

संघवी भेरु तारक धाम तीर्थ की ऐतिहासिक प्राण प्रतिष्ठा के बाद सिरोही में मेरी स्थिरता होने से इनके विवेचन का मेटर तैयार करने का मौका मिला व संस्था के कार्यकर्ता को मेटर देते ही उन्होंने छपवाने की कार्यवाही शुरु कर दी। फलस्वरूप सचित्र तत्त्वज्ञान पुस्तक आपके कर कमलों में आ रही है।

श्रीलोक प्रकाश, तत्त्वार्थसूत्र, बृहत् संग्रहणी व जैन तत्त्वज्ञान चित्रावली प्रकाश का आधार लेकर अथक प्रयत्न करके यह चित्रमय पुस्तक तैयार की गई है। उन सब का सहृदय आभार मानते हैं। जैन दर्शन का हार्द समझाने वाला तत्त्वज्ञान प्राप्त करके आप सम्यग्दर्शन प्राप्त करे या उसमें वृद्धि करें व परंपरा से अनन्तसुख वाले मोक्ष को प्राप्त करें। कोई क्षति रह गई हो, तो सूचित करें, जिससे नये संस्करण में संशोधन कर सके। इसका प्रकाशन १८२ वर्ष के इतिहास में पहली बार होने वाली सामूहिक ३४ दीक्षाओं के प्रसंग पर हो रहा है। इसलिये इस ज्ञान महोत्सव से हृदय आनंदविभोर बना है।

शास्त्रविरुद्ध कोई लिखा है, तो मिच्छामि दुक्कडं।

महा सुद - ४,

दिन - १६-२-२००२

आ. गुणरत्नसूरि

श्री सिद्धगिरि सामूहिक दीक्षा महोत्सव समिति

प्रेम भुवनभानु संयमवाटिका पालीताना

जि. भावनगर (गुज.)

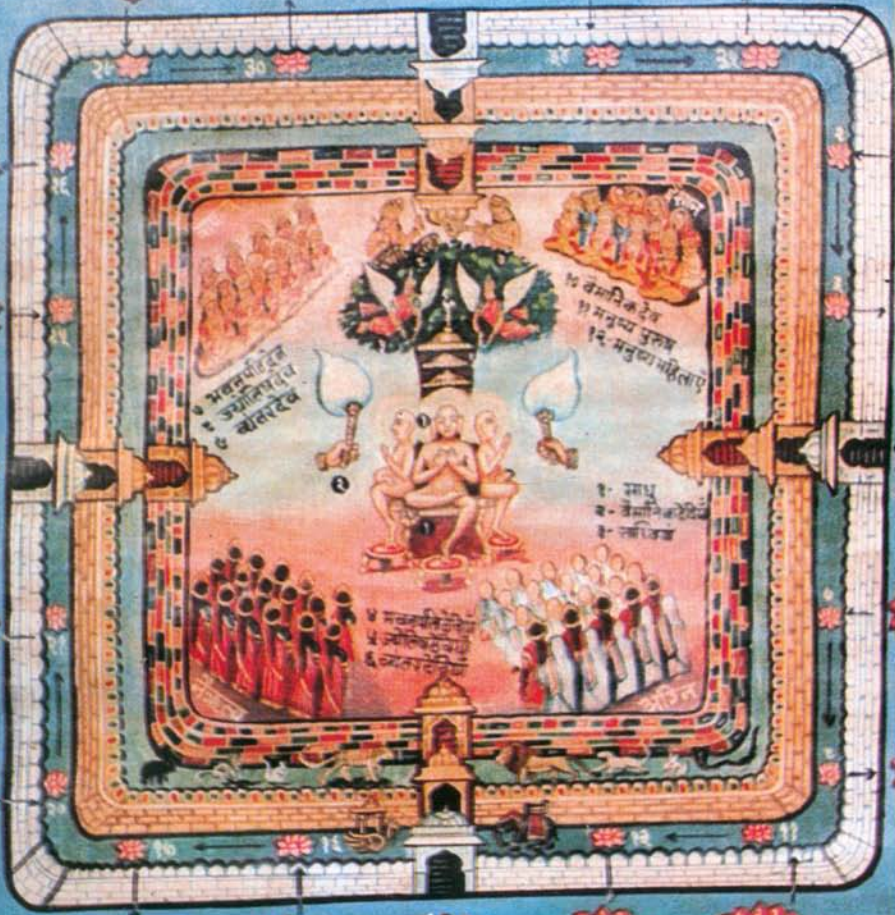
१. समवसरण से ध्यान

ध्यान यह अभ्यन्तर तप है । इससे आत्मा केवलज्ञान तक पहुँच सकती है । ध्यान में मन का बहुत महत्व है । अगर मन स्थिर नहीं होता, तो ध्यान हो ही नहीं सकता । चंचल मन को स्थिर करने पर ही ध्यान की उपलब्धि होती है । भगवान महावीर ने चंचल मन को पलटा, तो मोहराजा भगा और प्रभु को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई । इसीलिये पूजा में कहा गया है कि "तस रक्षक मन जिन पलटायो, मोहराय जाये भाग्यो, ध्यान केसरिया केवल वरिया, वसन्त अनन्त गुणगाय" मन को पलटने के लिये नवपद के केन्द्र में रहे हुए अरिहंत भगवान श्रेष्ठ आलम्बन है । कितने ही लोग कहते हैं कि नवकार मंत्र तो हम गिनते हैं, मगर मन दूसरी जगह भटकता है । इस तासीर को मिटाने के लिये नवकार महामंत्र गिनने से पहले मन को अरिहंत भगवान व समवसरण में स्थिर कर देना चाहिये । इसके लिये सब से पहले अरिहंत भगवान, उनकी १२ पर्षदा व समवसरण का ध्यान करना चाहिये, उसके बाद समवसरण के पहले गढ़ से आगे बताये जाने वाले क्रम के मुताबिक १०८ नवकारमंत्र गिनने से अद्भुत लाभ होगा । हाँ, यदि वहाँ मन अस्थिर बन गया, तो आप नवकारमंत्र का स्थान ही भूल जायेंगे । माला के बिना इस श्रेष्ठ प्रयास से १०८ नवकारमंत्र गिनने के लिये प्रारंभ में थोड़ी कठिनाई महसूस होगी, परंतु अभ्यास करने पर जरूर सफलता मिलेगी ।

समवसरण ध्यान हेतु सूचना :- प्रारंभ में समवसरण का चांदी

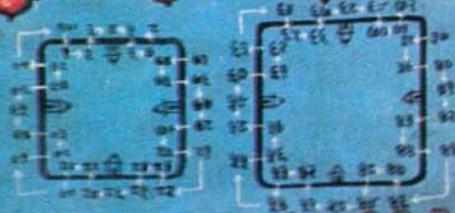
के गढ़ की कल्पना करें । उसके चारों ओर बाहर के भाग में $५ \times ४ = २०$ कमल व अन्दर के भाग में $४ \times ४ = १६$ कमल, कुल ३६ कमल की धारणा करें । उसका दूसरा गढ़ सोने का व तीसरा गढ़ रत्न का है, ऐसी धारणा करें । उसी प्रकार दोनों गढ़ों पर ३६-३६ कमल की धारणा करें । तीसरे गढ़ पर (१) सिंहासन पर चौमुखी अरिहंत भगवान बिराजमान होकर योग मुद्रा से देशना दे रहे हैं । (२) देव चामर ऊपर नीचे घूमा रहे हैं, वे मानो

समवसरण से ध्यान



- 1- सिंहासन
- 2- जलर
- 3- भागंडल
- 4- छत्रत्रय
- 5- गुणवृष्टि
- 6- अशोकपुष्प
- 7- दिवाधानि
- 8- इन्दुव

1- नमो अरिहंतणे
 2- नमो सिद्धाणे
 3- नमो अथ सिद्धाणे
 4- नमो उवज्जयाणे
 5- नमो लोद सख्खमावणे
 6- इतो पट्ठम नमुकुमो
 7- सब्बप्यावज्जयाणसणो
 8- मंगलाणे नु सज्जेमि
 9- पढमं हववुं मज्जम



सुवि श्री गुणवृष्टिविजयी न. के. जन्मदिने मे सुवसव विजयी संघी मेघनज्जी मज्जी की ओर
 निर्गत

कह रहे हैं कि जो हमारी तरह नीचे जाता है, उसे ही आध्यात्मिक ऊंचाई प्राप्त होती है। (३) मुख के पीछे तेजस्वी भामंडल है, जिससे अरिहंत परमात्मा का मुख कमल हमें अच्छी तरह दिखाई दे रहा है। (४) तीन छत्र सूचित करते हैं कि आपने तीन लोक का साम्राज्य प्राप्त कर लिया है। (५) देव घूटने तक पुष्प की वृष्टि कर रहे हैं, उसके ऊपर (६) अशोक वृक्ष सूचित कर रहा है कि आप शोक रहित है। (७) देव दिव्यध्वनि के द्वारा बंसी के सूर की पूर्ति कर रहे हैं। (८) दुंदुभि बजाकर घोषणा कर रहे हैं कि मुक्ति-पुरी के सार्थवाह आये हैं।

बारह पर्षदा

- (१) समवसरण के आग्नेय कोने में सब से आगे गणधर, केवली मुनिराजश्री व अन्य मुनिराजश्री गोदुहिका आसन में बैठकर देशना सुन रहे हैं।
- (२) उनके पीछे वैमानिक देवियाँ खड़ी रह कर देशना सुन रही हैं।
- (३) उनके पीछे साध्वीजियाँ खड़ी रह कर देशना सुन रही हैं।
- (४) नैऋत्य कोने में सब से आगे भवनपति देवियाँ खड़ी रह कर देशना सुन रही हैं।
- (५) उनके पीछे ज्योतिष्क देवियाँ खड़ी रह कर देशना सुन रही हैं।
- (६) उनके पीछे व्यन्तर देवियाँ खड़ी रह कर देशना सुन रही हैं।
- (७) वायव्य कोने में सबसे आगे भवनपति देव बैठ कर देशना सुन रहे हैं।
- (८) उनके पीछे ज्योतिष्क देव बैठ कर देशना सुन रहे हैं।
- (९) उनके पीछे व्यन्तर देव बैठ कर देशना सुन रहे हैं।
- (१०) ईशान दिशा में सबसे आगे वैमानिक देव बैठ कर देशना सुन रहे हैं।
- (११) उनके पीछे मानव बैठकर देशना सुन रहे हैं।
- (१२) उनके पीछे मानवियों (मनुष्य की माफिक उनकी स्त्रीयां) बैठकर देशना सुन रही हैं।

इस प्रकार मानसिक समवसरण का चिन्तन करके पूर्व दिशा के

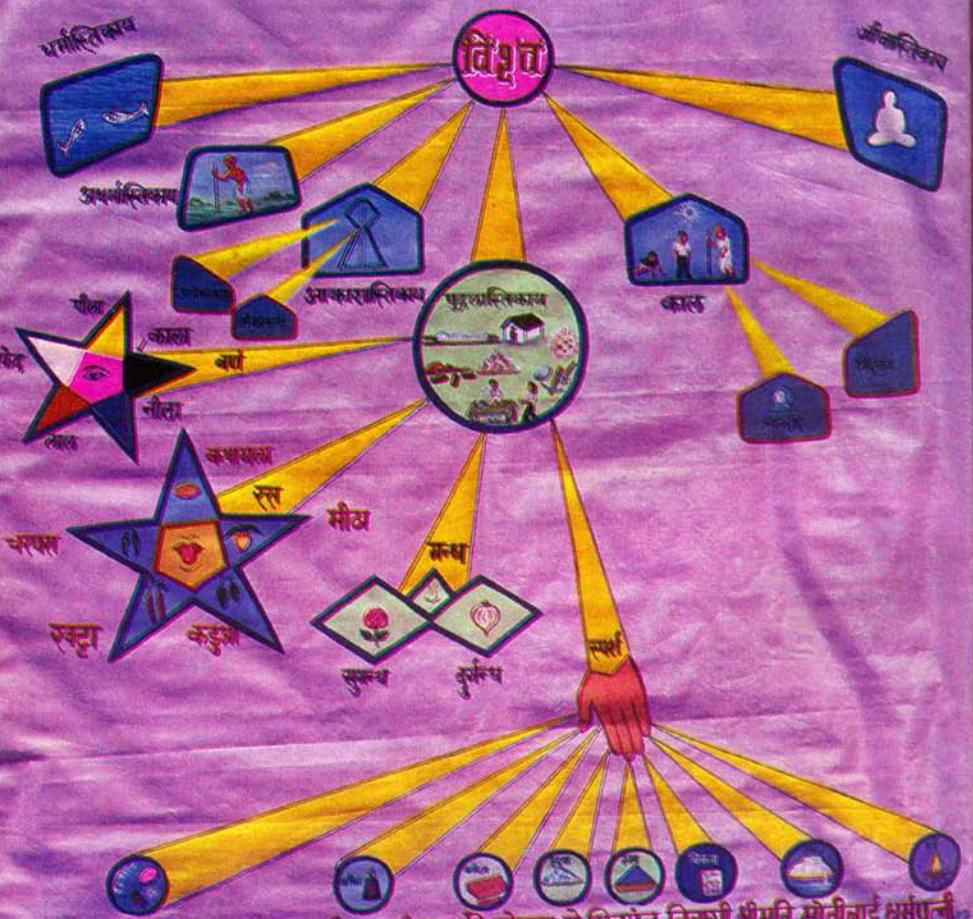
समवसरण के प्रथम गढ़ के बाहर जहां १ नंबर लगा है । उसके नीचे कमल है । उस पर १ से ९ अंक लिखे हैं, उस पर क्रमशः नवकार महामंत्र के ९ पद बोले । उसके बाद भाव से प्रथम गढ़ के अन्दर जाकर २ नंबर के कमल पर उसी प्रकार नवकार मंत्र गिने । उसके बाद आगे बढ़कर ३ नंबर के कमल पर नवकार मंत्र गिने । उसके बाद प्रथम गढ़ से बाहर निकल कर ४ नंबर के कमल पर नवकार मंत्र गिने । फिर आगे बढ़कर समवसरण के दरवाजे के ५ नंबर के कमल पर नवकार गिने । उसके बाद आगे बढ़कर ६ नंबर के कमल पर नवकार मंत्र गिने । उसके बाद अन्दर जाकर ७ नंबर के कमल पर, उसके बाद आगे बढ़कर ८ नंबर के कमल पर, उसके बाद बाहर निकल कर ९ नंबर के कमल पर नवकार गिने ।

जिस प्रकार पूर्व दिशा में ये ९ नवकार मंत्र गिने, उसी प्रकार दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में ९/९ नवकार महामंत्र गिने । इस प्रकार एक प्रदक्षिणा में पहले गढ़ पर ३६ नवकार होंगे । इसी तरह दूसरे, तीसरे गढ़ पर दूसरी, तीसरी प्रदक्षिणा में ३६-३६ नवकार मंत्र गिनने से कुल १०८ नवकारमंत्र एकाग्रता से गिने जा सकते हैं । एकाग्रता में लीन बनकर १०८ नवकार महामंत्र गिनने का यह श्रेष्ठ उपाय है ।

नवकार मंत्र के समान कोई मंत्र नहीं है ।
 वीतराग के समान कोई देव नहीं है ।
 शत्रुंजय के समान कोई तीर्थ नहीं है ।
 एक नवकार मंत्र गिनने से ५०० सागरपम
 जितने पाप कटते हैं



विश्व क्या है ?



— प. मुनिश्री गुणरत्नविजयजी म. की प्रेरणा से शिवभोज निवासी भीमति मोतीबाई धर्मपती
 पुनीलालजी वत्सजी द्वारा निर्मित

२. विश्व क्या है ?

जैन दृष्टि से जिसमें छ द्रव्य हो, उसे विश्व कहते हैं। उसका पर्यायवाची शब्द लोक है। जिसमें ६ द्रव्य दिखाई देते हैं, उसे लोक कहते हैं, जिसमें छ द्रव्य दिखाई नहीं देते, सिर्फ एक आकाशास्तिकाय द्रव्य ही दिखाई देता है, उसे अलोक कहते हैं। यह अनन्त है।

प्रश्न :- द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर :- जिसमें गुण और पर्याय होते हैं। उसे द्रव्य कहते हैं। जो द्रव्य के साथ ही रहते हैं, उसे गुण कहते हैं। जैसे सोने का पीलापन, आत्मद्रव्य का ज्ञान वगैरह। जो क्रम से होते हैं, वे पर्याय कहलाते हैं, जैसे सोने की अंगूठी, आत्मा का मनुष्यपना वगैरह पर्याय कहलाते हैं। गुण और पर्याय हमेशा द्रव्य में ही रहते हैं, वे कभी अलग नहीं रहते हैं, फिर भी द्रव्य से वे भिन्न कहलाते हैं। कपडा यह द्रव्य है, तो सफेद उसका गुण है। छोटा बड़ा आदि पर्याय है।

प्रश्न :- छ द्रव्य कौन-कौनसे हैं ? **उत्तर-** छ द्रव्य निम्न लिखित है।

(१) **धर्मास्तिकाय :-** जो द्रव्य जीव व पुद्गल (जड) द्रव्य को गमनागमन में सहायता करता है, उसे धर्मास्तिकाय द्रव्य कहते हैं। जैसे मछली खुद तैरने में समर्थ है, फिर भी पानी उसे सहायता करता है। वैसे ही जीव व जड में गति करने का स्वयं सिद्ध सामर्थ्य है ही, फिर भी धर्मास्तिकाय द्रव्य उसे सहायता करता है। जहां पानी नहीं होता है, वहां मछली की गति नहीं होती है, वैसे ही जहां धर्मास्तिकाय नहीं होता है, वहाँ अलोकाकाश में जीव और जड की गति नहीं होती है। इसीलिये लोक के बाहर अलोकाकाश में मुक्त आत्मा व पुद्गल नहीं जाते। क्योंकि धर्मास्तिकाय द्रव्य लोक में ही है, उसके बाहर नहीं है।

अब वैज्ञानिक भी धर्मास्तिकाय के करीब समान ईथर द्रव्य को मानने लगे हैं। क्योंकि सूर्य, ग्रह, चन्द्र, तारों के बीच बहुत

बड़ा अंतर है, फिर भी उनकी किरणें एक स्थान से दूसरे स्थान में इथर के माध्यम से जाती हैं। इस बात का स्वीकार करके वैज्ञानिक श्री ओ. ए. एस. ओडोंगरन ने कहा है कि Nowadays it is agreed that ether is not a kind of matter, being non-material its properties are sui generis. Characters such as mass and rigidity which we meet with in matter will naturally be absent in ether, but the ether will have new and distinctive characters of its own. non-material origin of ether. अन्य अनेक दूसरे विद्वानों ने भी कहा है कि Science and Jain Physics agree absolutely so far as they call Dharma (Ether) non-material, non-atomic, non-discrete Continuous Co-extensive with space indivisible and as a necessary medium for motion and one which does not itself move. इसका भावार्थ यह है कि वैज्ञानिकों द्वारा आज स्वीकार किया गया है कि इथर भौतिक पदार्थ नहीं है। जैन दर्शन से वे सहमत हैं कि इथर (धर्मास्तिकाय) अभौतिक, अपरमाणविक, अविभाज्य, अखंड आकाश के समान सर्वत्र व्याप्त अदृश्य गति का माध्यम व स्वयं स्थिर है।

- (२) **अधर्मास्तिकाय** :- जो द्रव्य जीव और जड़ को स्थिर रहने में सहायता करता है, उसे अधर्मास्तिकाय कहते हैं। जैसे बूढ़े मनुष्य को लाठी स्थिर रहने में सहायता करती है। इसी प्रकार कर्म से मुक्त बने हुए सिद्धात्माओं को सिद्ध शिला के ऊपर मोक्ष में अनन्तकाल तक स्थिर रहने में अधर्मास्तिकाय सहायता करता है।
- (३) **आकाशास्तिकाय** :- जिसमें जीव व जड़ को अवकाश देने का गुण हो, उसे आकाशास्तिकाय कहते हैं। यदि आकाश शून्य होता, तो उसमें अवकाश देने का सामर्थ्य गुण नहीं रहता। इसलिये अवकाश देने वाला द्रव्य आकाश कहलाता है। जिसमें धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य रहते हैं।
- (४) **जीवास्तिकाय** :- जिस द्रव्य में ज्ञान (चैतन्य), सुख वगैरह गुण रहते हैं, उसे जीवास्तिकाय कहते हैं। जीव, चेतन, आत्मा वगैरह इसके पर्यायवाची शब्द हैं। शेष ५ द्रव्य जड़ हैं।
- (५) **पुद्गलास्तिकाय** :- जिस द्रव्य में काला, नीला, पीला, लाल,

सफेद ये पांच रंग (वर्ण), मीठा (आम) कडुआ (करेला), खट्टा (इमली) चरपरा (मिर्ची) कषायला (हरडे) ये पांच रस, सुगंध (गुलाब), दुर्गन्ध (लहसून) ये दो गंध, गर्म (अग्नि), ठंडा (बर्फ), चिकना (घी), रूखा (राख), मृदु (रुई) कठोर (पत्थर) भारीपन (लोहा) हल्कापन (गुब्बारा) ये आठ स्पर्श होते हैं। उसे पुद्गलास्तिकाय कहते हैं।

(६) काल :- जो द्रव्य जीवादि द्रव्यों में नया पुराना आदि परिवर्तन करे अर्थात् जीवादि द्रव्यों के परिणमन में जो सहाय करे, उसे काल द्रव्य कहते हैं। जैसे अभी वस्तु उत्पन्न हुई है, वह नई कहलाती है। कुछ समय पहले उत्पन्न हुई है, वह पुरानी कहलाती है। नया पुराना आदि व्यवहार का कारण काल होता है। उसके भेद समय, सेकन्ड, मिनिट, घंटे वगैरह है।

प्रश्न :- काल शब्द के साथ "अस्तिकाय" शब्द क्यों नहीं जोड़ा गया ?

उत्तर :- अस्ति यानी छोटे से छोटा अविभाज्य अंश, जिसका केवलज्ञानी की दृष्टि से भी विभाजन न हो, उसे प्रदेश कहते हैं। काय यानी समूह, अस्तिकाय = प्रदेशों का समूह। जीवास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, व अधर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश होते हैं। आकाश के अनंत और पुद्गलास्तिकाय के संख्यात, असंख्यात व अनंत प्रदेश होते हैं। परंतु काल को तो जब भी हम सोचते हैं, तब वर्तमान काल एक समय रूप ही मिलता है। यह समय केवलज्ञानी की दृष्टि से काल का छोटे से छोटा अंश है। इसलिये प्रदेशों का समूह नहीं होने से अस्तिकाय शब्द काल के साथ नहीं जोड़ा जाता। समय को हम कल्पना से इकट्ठा करके मुहूर्त, सेकन्ड, मिनिट, घंटे, वगैरह का व्यवहार करते हैं।



३ चौदह राजलोक

विश्व के अंदर रहे हुए ६ द्रव्यों में से धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय का विशेष वर्णन करके अब हम आकाशास्तिकाय का वर्णन करते हैं।

आकाशास्तिकाय यानी आकाश। उसके दो भेद होते हैं।

(१) लोकाकाश यानी लोक (२) अलोकाकाश यानी अलोक।

जब कोई आदमी दो पैर फैला कर दो कोनिया मोडकर, कमर पर हाथ रखकर खड़ा रहता है, तब वैशाखी संस्थान बनता है। वह लोक का आकार है।

लोक :- यह लोक १४ राज ऊंचा है। सब से नीचे गोलाकार के रूप में ७ राज लम्बा चौड़ा है। वहाँ से ऊपर की ओर क्रमशः घटता हुआ ७ राज तक आते हैं, तब-अेक राज लंबा चौड़ा हो जाता है। यहाँ से ऊपर की ओर क्रमशः बढ़ता हुआ $3\frac{9}{2}$ राज जाने पर ५ राज लम्बा चौड़ा हो जाता है। उसके बाद क्रमशः घटता हुआ $3\frac{9}{2}$ राज जाने पर १ राज हो जाता है। इस लोक की ऊंचाई $7 + 3\frac{9}{2} + 3\frac{9}{2} = 14$ राज है। यह सारा लोक गोलाकार है। लोक के अंतिम किनारे पर निष्कृत यानी दंताली जैसे खांचे होते हैं।

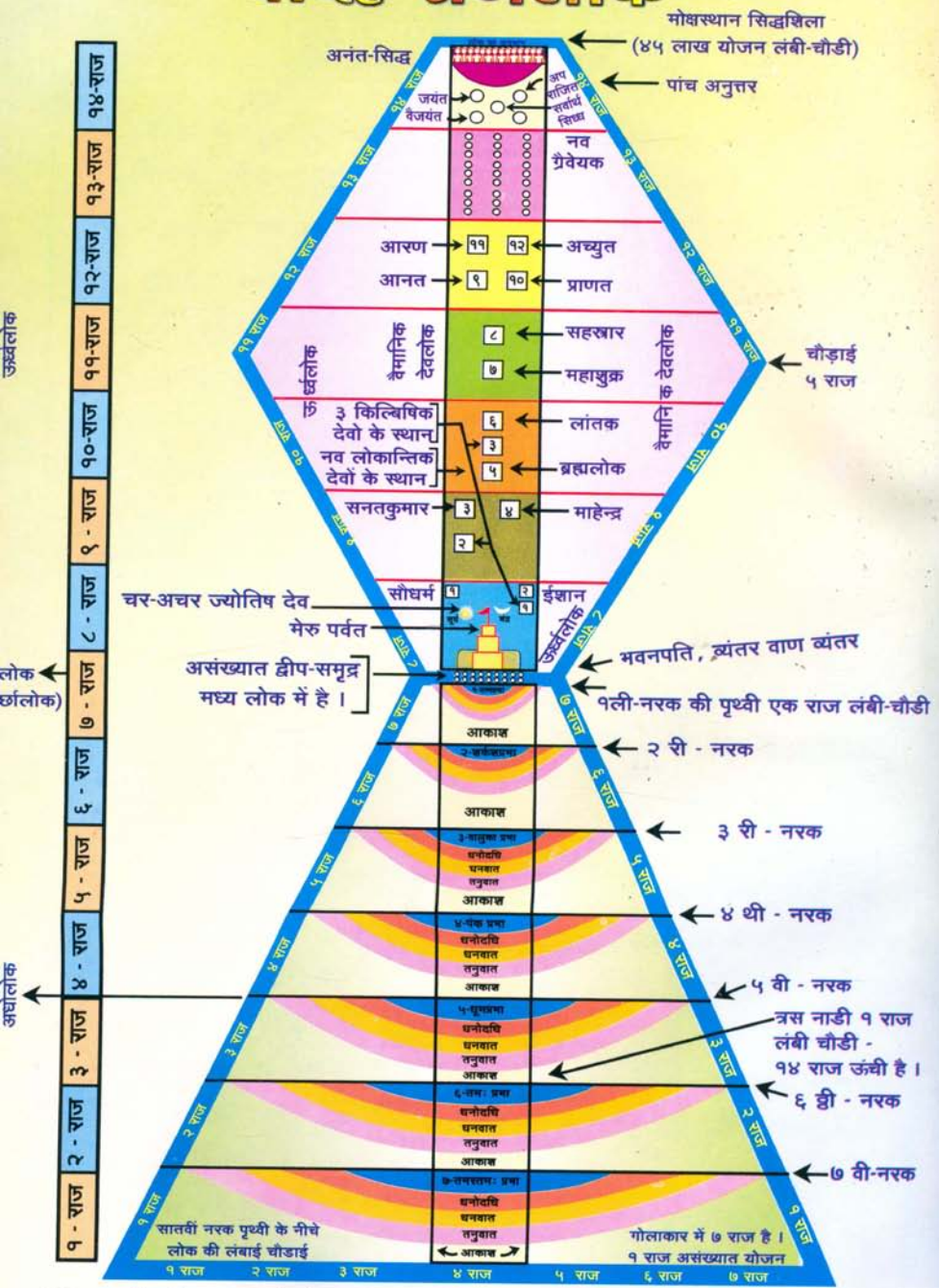
प्रश्न :- राज किसे कहते हैं?

उत्तर :- कल्पना कीजिए कि कोई अेक देव २० हजार मण का लोहे का अेक जबरदस्त गोला खुब शक्ति लगाकर ऊपर से जमीन पर फेंके, तो उसे जमीन पर पहुँचते ६ महीने लग जाये, इतनी दूरी को एक राज कहते हैं। अेक राज में असंख्यात योजन होते हैं।

त्रसनाडी :- इस लोक के मध्य में १४ राज ऊंची व १ राज लम्बी चौड़ी गोलाकार त्रसनाडी है। उसमें त्रस व अेकेन्द्रिय जीव रहते हैं। शेष लोक में अेकेन्द्रिय जीव ही रहते हैं।

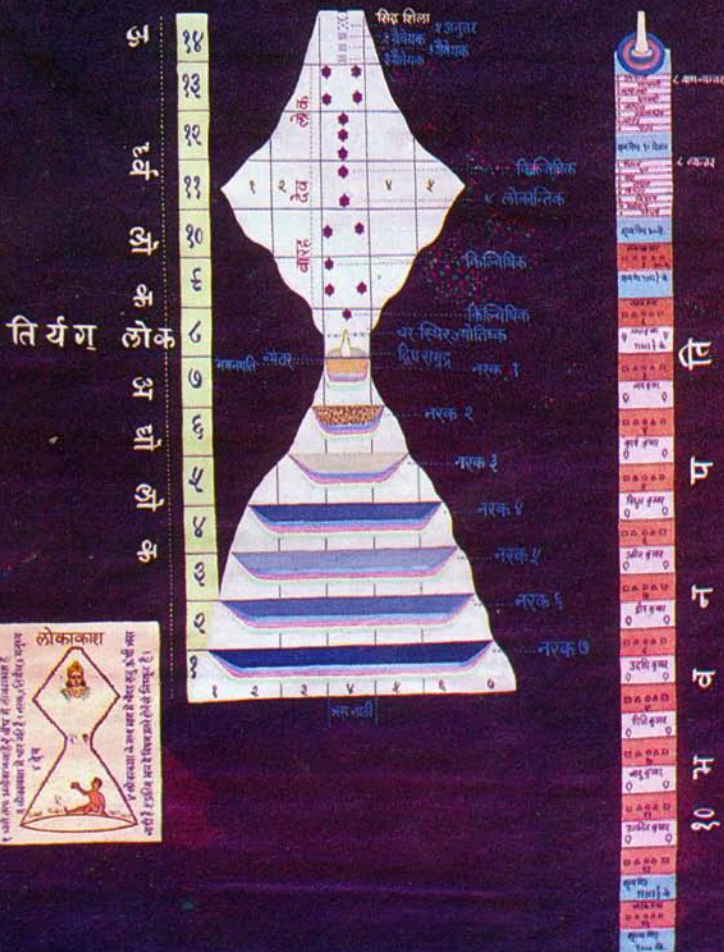
तीन लोक :- (१) तिर्यग्लोक = मध्यलोक (२) अधोलोक (३) ऊर्ध्वलोक।

चौदह राजलोक



- ग : (१) इस लोक के बाहर चारों ओर अलोक (अलोकाकाश) है ।
 (२) १ से ७ वी नरक पृथ्वी क्रमशः १ से ७ राज लंबी - चौड़ी है ।
 (३) यह १४ राजलोक का चित्र बृहत्संग्रहणी आदि ग्रंथों के अनुसार बताया है। इसके बाद जीव समास आदि ग्रंथ के अनुसार आगे दिया है ।

૧૪ રાજલોક



પૂ. મુનિશ્રી ગુણરત્નાવિજયગી મ. કી પ્રેરણાએ શ્રી જૈન વ્યથ માંઢવલા દ્વારા નિર્મિત

(१) **तिर्यग्लोक :-** तिर्यग्लोक में १ राज लंबी चौड़ी रत्नप्रभा पृथ्वी है। उसके मध्य में थाली के आकार का जम्बुद्वीप १ लाख योजन लम्बा - चौड़ा है। उसके मध्य में मेरुपर्वत १ लाख योजन ऊंचा है। जम्बुद्वीप के बाद दुगुना यानी २ लाख योजन लम्बाई चौड़ाई वाला कंगन के आकार का लवण समुद्र है। उससे दुगुने दुगुने क्रमशः भिन्न भिन्न नाम वाले असंख्यात द्वीप व समुद्र है। अंतिम असंख्यातवां समुद्र स्वयंभूरमण असंख्यात योजन लंबा - चौड़ाकार कंगन के आकार का है।

मेरुपर्वत :- यह १ लाख योजन ऊंचा है। उसमें से वह ९९,००० योजन बाहर है व समभूतला पृथ्वी के नीचे १००० योजन जमीन के अंदर है। उसमें से ९०० योजन के नीचे अधोलोक है यानी मेरुपर्वत के १०० योजन अधोलोक में हैं। समभूतला पृथ्वी से ऊपर ९०० योजन के बाद ऊर्ध्वलोक है। इसलिए $९९,००० - ९०० = ९८१००$ योजन ऊर्ध्वलोक में है। $९०० + ९०० = १८००$ योजन तिर्यग्लोक में है। ऊर्ध्वलोक में $९८१०० +$ तिर्यग्लोक में $१८०० +$ अधोलोक में $१०० = १$ लाख योजन मेरु पर्वत है।

(२) **अधोलोक :-** हम जिस पर रहते हैं। वह पहली रत्नप्रभा पृथ्वी है। वह थाली के जैसी गोलाकार है। उसकी मोटाई १८०००० योजन और चौड़ाई व लम्बाई सतह पर अंक राज है। समभूतला रत्नप्रभा पृथ्वी से नीचे ९०० योजन जाने पर अधोलोक शुरु होता है। वह ७वीं पृथ्वी तक है! रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे किचड है। उसके नीचे घन पानी है। तथास्वभाव से उसके नीचे घनवायु है। उसके नीचे तनुवायु है, उसके नीचे आकाश है। इसी प्रकार नीचे नीचे क्रमशः शर्कराप्रभा, वालुका प्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, महातमप्रभा नाम की पृथ्वियाँ ज्यादा ज्यादा चौड़ी है। एवं उनके नीचे भी कादव घनपानी घनवायु तनुवायु आकाश है। इन ७ पृथ्वियों में से एक एक पृथ्वी एक - एक राज के अन्तर से है। व क्रमशः उनकी चौड़ाई बढ़ती जाती है। उनमें क्रमशः सात नारक के जीव रहते हैं। उन पृथ्वियों के नाम के अनुसार उनमें प्रकाश होता है। जैसे कि रत्न जैसा, कंकड जैसा,

बालुका जैसा इत्यादि, वहाँ सूर्य वगैरह का प्रकाश नहीं होता ।

रत्नप्रभा पृथ्वी का विशेष विवरण :-

- (१) रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपरी भाग के १००० योजन छोड़कर व नीचे के भाग से १००० योजन छोड़कर बीचमें १८०००० - २००० (१००० + १०००) = १७८००० योजन जो पृथ्वी है । उसमें १२ अंतराल व १३ प्रतर हैं । उनमें नरकावास है । कुल ३० लाख नरकावास है । १२ अंतराल में से ऊपर व नीचे का अेक अेक अंतराल छोड़कर बीच के १० अंतराल में १० भवनपति देव क्रमशः रहते हैं । एवं परमाधामी देव भी रहते हैं । वे सभी अधोलोक में कहलाते हैं ।
- (२) रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के जो १००० योजन छोड़े गये हैं । उसमें से ऊपर के १०० योजन व नीचे के १०० योजन छोड़कर बीच के ८०० योजन के ८ अंतराल में ८ प्रकार के व्यंतरदेव क्रमशः रहते हैं। वे तिर्यग्लोक में ही कहलाते हैं ।
- (३) रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के जो १०० योजन छोड़े गये हैं । उसके ऊपर के १० योजन व नीचे के १० योजन छोड़कर बीच के ८० योजन के ८ अंतराल में ८ वाणव्यंतर रहते हैं । वे भी तिर्यग्लोक में कहलाते हैं ।
- (४) **ज्योतिष्कदेव** :- रत्नप्रभा पृथ्वी के समभूतला से ७९० योजन जाने पर तारे, ८०० योजन पर सूर्य, ८८० योजन पर चंद्र, ८८४ योजन पर नक्षत्र, ८८८ योजन पर बुध, ८९१ योजन पर शुक्र, ८९४ योजन पर गुरु, ८९७ योजन पर मंगल, व ९०० योजन पर शनि होते हैं । ये सब तिर्यक्लोक में कहलाते हैं ।
- (३) **उर्ध्वलोक** :- उर्ध्वलोक में वैमानिक देव रहते हैं ।

रत्नप्रभा पृथ्वी के समभूतल तक नीचे से ७ राज पूरे होते हैं । उसके ऊपर ८ वें राज तक बाजु-बाजु में (१) सौधर्मदेव और

(२) ईशान देव रहते हैं । उन दोनोकीं नीचे किल्बीषिक देव रहते हैं । एवं ९वें राज तक (३) सनत्कुमार व उसके नीचे किल्बीषिक देव रहे हैं । (४) महेन्द्रदेव रहते हैं । (५) ब्रह्मलोक के देव रहते हैं । वहां लोकान्तिक देव भी होते हैं । उसके ऊपर १० वें राज तक (६) लान्तक देव रहते हैं, उसके नीचे किल्बीषिक देव रहते हैं । उसके ऊपर (७) महाशुक्रदेव व उसके ऊपर ११ वें राज तक (८) सहस्त्रार देव रहते हैं । उसके उपर (९) आनत व (१०) प्राणत के देव बाजु बाजु में रहते हैं और उसके ऊपर (११) आरण व (१२) अच्युत देव बाजु बाजु १२ वें राज तक रहते हैं । उसके ऊपर १३ वें राज तक एक एक के ऊपर क्रमशः नौ ग्रैवेयक रहते हैं । उसके ऊपर १४ वें राज तक क्रमशः पांच अनुत्तर और सिद्ध शिला व सिद्ध है । उसके बाद अलोक है ।

तत्त्वज्ञानाद् मुक्ति :

तत्त्वज्ञान से मोक्ष होता है ।

लोकसंस्थान का चिन्तन धर्मध्यान है ।

इसलिये लोक के विभिन्न आकारों को

चिन्तन कीजिये

४ तिर्यग्लोक में ढाई द्वीप

(१) हम पहले बता चुके हैं कि तिर्यग् लोक में रत्नप्रभा पृथ्वी के मध्य में थाली के आकार का १ लाख योजन चौड़ाई वाला जम्बू द्वीप है। उसके चारों ओर दो लाख योजन चौड़ाई वाला कंगन के आकार का लवण समुद्र है। उसके चारों ओर ४ लाख योजन चौड़ाई वाला कंगन के आकार का घातकी खंड है। उसके चारों तरफ ८ लाख योजन चौड़ाई वाला कंगन के आकार का कालोदधि समुद्र है। उसके चारों ओर १६ लाख योजन चौड़ाई वाला कंगन के आकार का पुष्करवर द्वीप है। उसके आगे द्विगुण द्विगुण चौड़ाई वाले कंगन आकार के क्रमशः पुष्करवर समुद्र, ४ वारुणी वर द्वीप, वारुणीवर समुद्र, ५ क्षीरवर द्वीप, क्षीरवर सागर, ६ घृतवर द्वीप, घृतवर समुद्र, ७ ईक्षुवर द्वीप, ईक्षुवर समुद्र, ८ नंदीश्वर द्वीप है। उसके बाद समुद्र व द्वीप अेक अेक अन्तर से अलग अलग नाम से है। अन्तिम समुद्र स्वयंभूरमण है। वहां तिर्यग् लोक का अन्त है। उसकी चौड़ाई असंख्यात योजन है।

लवण समुद्र का पानी खारा है। कालोदधि, पुष्करवर और समुद्र स्वयंभू रमण का पानी अपने पानी के जैसे स्वाद वाला है। उसके आगे के समुद्रों के जैसे नाम है, वैसे ही शराब, दूध, घी, ईक्षुरस वगैरह जैसे स्वाद वाला पानी उन समुद्रों में होता है।

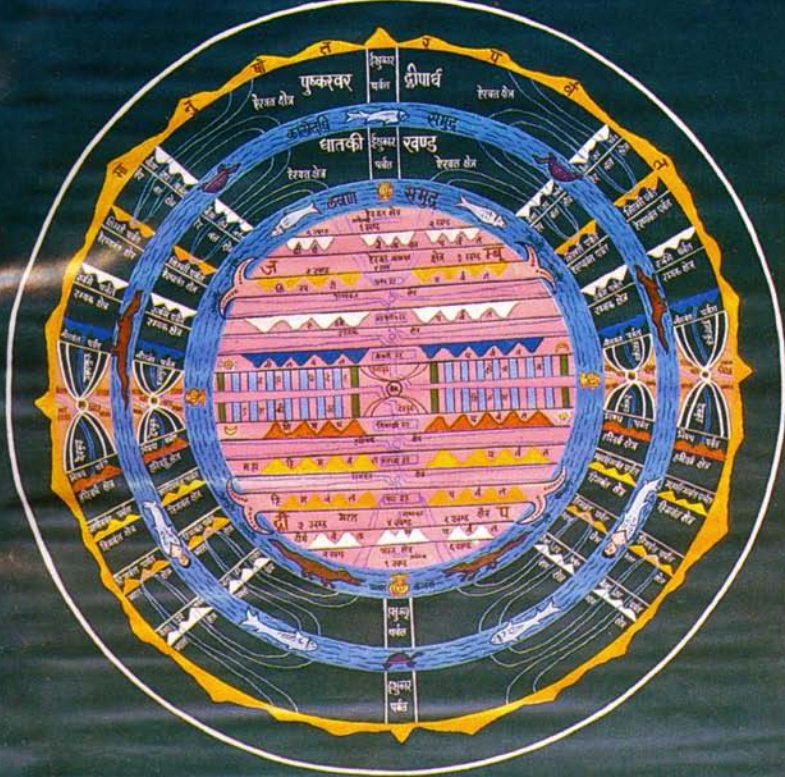
ढाई द्वीप = मनुष्यलोक

तिर्यग्लोक के मध्य में जम्बू द्वीप १ लाख योजन प्रमाण है। उसके पूर्व व पश्चिम दोनों ओर २ - २ लाख योजन प्रमाण लवण समुद्र $२ + २ = ४$ लाख योजन प्रमाण हैं।

उसके दोनों ओर ४ - ४ लाख योजन घातकी खंड $४ + ४ = ८$ लाख योजन प्रमाण है, उसके दोनों ओर ८ - ८ लाख योजन कालोदधि समुद्र $८ + ८ = १६$ लाख योजन प्रमाण है पुष्कर वर द्वीप को कंगन के आकारवाला मानुषोत्तर पर्वत विभाजित करता है, उस आधे पुष्कर वर

ढाई द्वीप

उत्कृष्ट से १०० तीर्थकर कहें होते हैं।



द्वीप में ही मनुष्य रहते हैं। इसलिये दोनों ओर ८, ८ लाख योजन पुष्कर वर द्वीपार्ध $८+८=१६$ लाख योजन प्रमाण है। इसलिये ढाई द्वीप $१+४+८+१६+१६=४५$ लाख योजन वाला मनुष्य लोक है। इसमें ही मनुष्य जन्म लेते हैं व मरते हैं। इसके बाहर मनुष्य का जन्म मरण नहीं होता। कोई देव अपहरण करके या सहायता करके मनुष्य को इन ढाई द्वीप के बाहर ले भी जाये, तो वहां मृत्यु नहीं होती, वापस ढाई द्वीप में लाने के बाद ही मृत्यु होती है। ढाई द्वीप के बाहर व्यवहार काल, अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदि का परिभ्रमण वगैरह नहीं होता।

जम्बू द्वीप तिर्यग् लोक के मध्य में थाली आकार का जम्बू द्वीप है। उसके दक्षिण में (१) भरत क्षेत्र है। उसके बाद पूर्व पश्चिम तक फैला हुआ वैताढ्य पर्वत भरत क्षेत्र को दक्षिणार्ध व उत्तरार्ध में बांट देता है।

उसके बाद लघु हिमवत् पर्वत पूर्व पश्चिम में फैलकर दोनों ओर समुद्र में गया है। समुद्र के भीतर पश्चिम दिशा में दो दाढ़ा एवं पूर्व दिशा में दो दाढ़ा की आकृति के दो दो पर्वतीय भाग के रूप में पर्वत है। हरेक दाढ़ा के ऊपर ७ अन्तर्द्वीप होते हैं। इसलिये २८ अन्तर्द्वीप हुए। इसी प्रकार समुद्र के भीतर शिखरी पर्वत की भी ४ दाढ़ायें है, उन पर २८ अन्तर् द्वीप होते हैं। इस प्रकार कुल ५६ अन्तर्द्वीप हुए। उस लघु हिमवत् पर्वत पर पद्मद्रह है। उसके पूर्व में गंगा नदी व पश्चिम में से सिन्धु नदी निकली है। वे क्रमशः उत्तरार्ध भरत, वैताढ्य पर्वत व दक्षिणार्ध भरत होकर लवणसमुद्र में गिरती है। इस प्रकार उत्तरार्ध भरत व दक्षिणार्ध भरत, ३ - ३ खंडों में विभाजित हो जाने से भरत क्षेत्र के ६ खंड हो जाते हैं। चक्रवर्ती सम्पूर्ण भरत क्षेत्र पर राज्य करता है। इसलिये वह षट्खंडाधिपति कहलाता है।

(२) लघुहिमवत् पर्वत के उत्तर में हिमवत् क्षेत्र हैं। उसके मध्य में शब्दापाती गोलाकार पर्वत है। उसके उत्तर में पूर्व पश्चिम फैला हुआ महाहिमवत् पर्वत है। दक्षिण दिशा में से रहे हुए लघु हिमवत् पर्वत के ऊपर पद्मद्रह से रोहितांशा नाम की नदी उत्तर दिशा में निकलती है। वह शब्दापाती के पास से होकर बहती हुई पश्चिम दिशा में मूड कर

लवण समुद्र में गिरती है। महाहिमवत् पर्वत पर रहे हुए महापद्मद्रह से दक्षिण दिशा में रोहिता नदी बहती हुई शब्दापाती पर्वत से पूर्व दिशा में होकर लवण समुद्र में गिरती है। हिमवत् क्षेत्र में युगलिक मनुष्य होते हैं।

(३) महा हिमवत् पर्वत के बाद उत्तर में हरिवर्ष क्षेत्र है। उसके मध्य में गंधापाती गोलाकार पर्वत है। उसके उत्तर में निषध पर्वत है। महा हिमवत् पर्वत के ऊपर महापद्मद्रह से उत्तर दिशा में हरिकांता नदी निकल कर गंधापाती पर्वत से पश्चिम की ओर मुड़ कर लवण समुद्र में गिरती है और निषध पर्वत के ऊपर तिगिच्छी द्रह से दक्षिण दिशा में हरिसलिला नदी निकलकर गंधापाती पर्वत के पास पूर्व की ओर मूड कर लवण समुद्र में गिरती है। इस हरिवर्ष क्षेत्र में भी युगलिक मनुष्य होते हैं।

(४) निषधपर्वत के बाद उत्तर में महाविदेह क्षेत्र है। उसके आगे नीलवंत पर्वत है। निषध पर्वत के तिगिच्छि द्रह से उत्तर दिशा में सीतोदा नदी बहती हुई चित्रक व विचित्र नाम के पर्वत से होकर युगलिक क्षेत्र देवकुरु में होती हुई ५ (पांच) सरोवरों का भेदन करती आगे बढ़ती है। उसके दोनों ओर गजदंत के आकार के विद्युत्प्रभ व सोमनस पर्वत है। वहां से होती हुई मेरु पर्वत की ओर बढ़ती है और उसके पास से होकर पश्चिम दिशा में मुड़कर महाविदेह क्षेत्र को दो विभागों में विभाजित करती हुई लवणसमुद्र में गिरती है। इसी प्रकार नीलवंत पर्वत से केशरी द्रह में से सीता नदी निकल कर जमक व शमक नाम के पर्वत से होकर युगलिक क्षेत्र उत्तर कुरु में होकर ५ सरोवरों का भेदन करती हुई आगे बढ़ती है। उसके दोनों ओर माल्यवंत और गंधमाल्य पर्वत है। वहाँ से होती हुई वह मेरु पर्वत की ओर बढ़ती है और उसके पास में होकर पूर्व दिशा में मूडकर महाविदेह क्षेत्र को दो विभागों में विभाजित करती हुई लवण समुद्र में गिरती है।

इस प्रकार पूर्व महाविदेह में सीता नदी के अेक ओर ८ विजय और दूसरी ओर ८ विजय है। दो दो विजय के बीच में अेक अेक नदी है। एवं पश्चिम महाविदेह में भी सीतोदा नदी के एक ओर ८ विजय और

दूसरी ओर ८ विजय है। दो - दो विजय के बीच में एक - एक नदी है। इसलिये जाना आना नहीं होता है। इस प्रकार महाविदेह क्षेत्र में कुल ३२ विजय होती है।

(५) उसके बाद नीलवंत पर्वत के केशरी द्रह से नारीकान्ता नदी निकल कर रम्यक् क्षेत्र से बहती हुई गोलाकार मात्यवंत पर्वत से मूडकर लवण समुद्र में गिरती है और रुक्मी पर्वत के महापुंडरिक द्रह से नरकान्ता नदी निकल कर रम्यक् क्षेत्र में बहती हुई मात्यवंत पर्वत से मूडकर लवण समुद्र में गिरती है।

(६) उसके बाद रुक्मी पर्वत के महापुंडरिक द्रह से रुप्यकला नदी निकल कर हिरण्यवंत क्षेत्र में बहती हुई गोलाकार विकटपाती पर्वत के पास मूडकर लवणसमुद्र में गिरती है और शिखरी पर्वत से सुवर्णकला नदी पुंडरिक द्रह से निकल कर औरवत क्षेत्र में बहती हुई गोलाकार विकटपाती पर्वत के पास मूड कर लवण समुद्र में गिरती है।

(७) उसके बाद शिखरी पर्वत पर रहे हुए पुंडरिक द्रह से पूर्व पश्चिम दोनों ओर हिमवत् के पद्म द्रह से निकलने वाली गंगा सिंधु की तरह औरवत क्षेत्र में बहती हुई रक्ता व रक्तवती नदी लवण समुद्र में गिरती है।

इस प्रकार जम्बू द्वीप में ७ पर्वत क्रमशः है। भरत वगैरह क्षेत्र लघु हिमवत् वगैरह पर्वतों से अंतरित है। जैसे कि (१) भरत क्षेत्र (२) लघुहिमवत् पर्वत (३) हिमवंत क्षेत्र (४) महा हिमवंत पर्वत (५) हरिवर्ष क्षेत्र (६) निषध पर्वत (७) मेरु पर्वत के, उत्तर दक्षिण में उत्तर कुरु देवकुरु, (८) महाविदेह क्षेत्र मेरु पर्वत के पूर्व पश्चिम में है (९) नीलवंत पर्वत (१०) रम्यक् क्षेत्र (११) रुक्मी पर्वत (१२) हिरण्यवंत क्षेत्र (१३) शिखरी पर्वत (१४) औरवत क्षेत्र इस प्रकार ७ क्षेत्र व ७ पर्वत है।

१७० तीर्थकर

इस जम्बू द्वीप में १ भरत १ औरवत और १ महाविदेह क्षेत्र में ३२ विजय होती हैं। उनमें ही तीर्थकर होते हैं। शेष में नहीं होते। घातकी खंड को उत्तर व दक्षिण में रहा हुआ ईषुकार पर्वत पूर्व व पश्चिम में

आत्मा शरीरादि से भिन्न क्यों हैं ?

- १- शरीर व आत्मा के गुण अलग
- २- रबून के लिए जीव होना जरूरी
- ३- जीव चला गया
- ४- ज्ञान की तारतम्यता शरीर से नहीं

- ५- घर से मालिक अलग
- ६- कपड़े की तरह आत्मा शरीर की सफाई करती है।
- ७- काररवान की तरह व्यवस्था
- ८- पाँच इंद्रियों रूपी अलग अलग ५ खिड़कियाँ



- ९- और से तप्त होने पर स्मरण
- १०- हाथ को अपनी डूँछा से मोड़ना
- ११- आत्मा नहीं है
- १२- शरीर व जीव के पर्यायवाची अलग है

- १३- पूर्व भव का स्मरण
- १४- प्रिय प्रिय बस्तु को छोड़ना
- १५- मेरा शरीर अच्छा नहीं है

पृ. मुनि श्री गुणरत्न विजय जी म. सा. के सदुपदेश से शा. गुलाब चंद जी रघुनाथ जी तरबत गढ़ द्वारा निर्मित.

५ आत्मा शरीरादि से भिन्न क्यों हैं ?

छः द्रव्य में से धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय इन तीन द्रव्यों का वर्णन हम कर चुके हैं। अब चौथे जीवास्तिकाय द्रव्य का वर्णन कर रहे हैं।

जीवास्तिकाय यानी जीव, आत्मा। शरीर पुद्गल द्रव्य है। आत्मा उसमें रहती है। शरीर ही आत्मा नहीं है। उससे आत्मा भिन्न है।

प्रश्न :- जीव शरीरादि से भिन्न क्यों है ?

उत्तर :- शरीरादि भिन्न है, उसके १५ प्रमाण यानी सत्य युक्तियाँ निम्नलिखित हैं।

१. जीव के गुण धर्म ज्ञान, इच्छा, सुख, दुःख वगैरह हैं। जब कि शरीर के गुण धर्म रूप - रस-गंध-स्पर्श आदि हैं। दोनों वस्तुओं के गुण धर्म अलग - अलग होने से दोनों वस्तुएं भिन्न होती हैं। जैसे शक्कर व गेहूं।
२. जब तक शरीर में जीव होता है, तब तक ही रूखे-सूखे भोजन से भी खून वगैरह बनता है। किन्तु मृत शरीर में नहीं बनता।
३. इस शरीर में से जीव चला गया, इस शरीर में जीव था, इस प्रकार बोलने से भी सिद्ध होता है कि जिसमें था, वह अलग चीज थी और जो था, वह अलग। अलग पदार्थ शरीर रूप आधार व अलग पदार्थ जीव रूप आधेय दोनों अलग होते हैं, जैसे भूतल व घर। अन्यथा जीव नाम का कहीं पर भी प्रयोग नहीं होता।
४. शरीर के घटने बढ़ने से ज्ञानादि घटते बढ़ते नहीं है। इसलिये शरीर से जीव भिन्न है।
५. शरीर एक मकान के समान है। जैसे मकान के अन्दर पाकखाना, पायखाना, खिड़कियाँ दरवाजे इत्यादि होते हैं। इसके अलावा उसमें रहने वाला मालिक अलग होता है। इस प्रकार शरीर रूपी मकान का मालिक आत्मा शरीर से भिन्न है।

६. शरीर एक भोग्य वस्तु है, तो उसकी सम्हाल लेने वाला कोई अलग पदार्थ होना चाहिए, जिस प्रकार भोग्य कपड़े मैले होने पर उपभोक्ता उसको स्वच्छ बनाता है, ठीक उसी प्रकार शरीर को स्वच्छ बनाने के लिये आत्मा प्रयत्न करती है ।
७. शरीर एक कारखाना है, पेट बॉइलर है, हृदय मशीन है, दिमाग मेनेजर है, आत्मा मालिक है। जैसे ही आत्मा शरीर को छोड़ देती है, उसी समय शरीर रूपी कारखाना बन्द हो जाता है ।
८. आत्मा चक्षु आदि इन्द्रियों से भी भिन्न है । चक्षु आदि इन्द्रियों को हम आत्मा नहीं कह सकते, क्योंकि मृत शरीर में चक्षु होने पर भी वे ज्ञान नहीं कर सकती । एवं भिन्न - भिन्न इन्द्रियों से ज्ञान का एकीकरण आत्मा के सिवाय संभव नहीं है । जैसे कि जिस आम को मैंने देखा है, उसी को सूँघता हूँ । उसी का स्वाद करता हूँ, उसी की आवाज सुनता हूँ, उसी का स्पर्श करता हूँ । इस प्रकार भिन्न - भिन्न इन्द्रियों से जो ज्ञान होता है, उसका एकीकरण आत्मा के सिवाय कौन कर सकता है ?
९. इन्द्रियों के नाश होने पर भी अर्थात् किसी-किसी इन्द्रियों का नाश होने पर भी स्मृति होती है । स्मृति का यह नियम है कि जिसको अनुभव हुआ हो, उसी को स्मृति होती है । यदि आंखों को ही ज्ञान करने वाली आत्मा मानी जाये, तो आंखों से अंधे होने पर भी स्मृति क्यों होती है ? इसलिये ज्ञान करने वाली चक्षु आदि इन्द्रियां नहीं हैं, परन्तु आत्मा स्वयं है, चक्षु तो उसके माध्यम हैं ।
१०. नये - नये विचार, इच्छा, हाथ - पैर आदि के हलन चलन की क्रिया का प्रयत्न करने वाली आत्मा है, वह चाहे तो विचार आदि चालू रखे, वह चाहे तो बन्द कर सकती है ।
११. आत्मा नहीं है । इस प्रकार बोलने से भी आत्मा सिद्ध होती है। दुनियां में कोई चीज विद्यमान होती है, उसी का निषेध किया जाता है। एवं आत्मशब्द का प्रयोग भी आत्मद्रव्य के बिना नहीं हो सकता है ।

१२. शरीर के पर्यायवाचक शब्द देह, काया, कलेवर वगैरह अलग है और आत्मा के पर्यायवाची शब्द जीव, चेतन वगैरह अलग है। जिनके पर्यायवाचक शब्द अलग होते हैं, वे अलग पदार्थ होते हैं। जैसे घोडा व गधा वगैरह।
१३. किसी - किसी मनुष्य को पूर्वभव का स्मरण होने से सिद्ध होता है कि पहले भी आत्मा वही थी और अब भी वही आत्मा है, क्योंकि अनुभव और स्मृति का एकाधिरण में कार्यकारण भाव है। जब कि शरीर को जला दिया गया है। वह शरीर तो है नहीं, फिर भी स्मरण होता है। इसलिये शरीर से आत्मा भिन्न है।
१४. जीव का स्वभाव है कि वह अधिकाधिक प्रिय वस्तु को ग्रहण करने की कोशिश करता है और अप्रिय वस्तु को छोड़ने की कोशिश करता है। इस प्रकार की ममता आदि को करने वाली आत्मा शरीर से भिन्न है। जैसे कि मनुष्य पैसे के लिये भोजन छोड़ देता है, पुत्र के लिये पैसा छोड़ देता है, स्त्री के लिये पुत्र का त्याग कर देता है और शरीर के लिये स्त्री का त्याग कर देता है और ममता यानी मान के लिये शरीर का भी त्याग कर देता है।
१५. मेरा शरीर अच्छा नहीं है। 'मेरा शरीर' इस शब्द का वहीं पर प्रयोग होता है, जहां दोनों वस्तुएँ अलग होती हैं। जैसे मेरा कपड़ा। जिस प्रकार 'मैं' और कपड़ा अलग होते हैं, वैसे मेरा और शरीर अलग है। इसलिये शरीर से आत्मा भिन्न है।



६ आत्मा के भेद कितने हैं ।

इस विश्व में अनन्त आत्मार्थें हैं । उनका तीन विभागों में वर्गीकरण हो सकता है । (१) बहिरात्मा (२) अन्तरात्मा (३) परमात्मा

(१) **बहिरात्मा :-** शरीर को ही आत्मा का स्वरूप मानता है । अर्थात् शरीर ही आत्मा है । उससे अलग आत्मा नहीं है । इसलिये शरीर के सुख के लिये स्पर्शेन्द्रियादि विषयों में बेरोक टोक प्रवृत्त होता है । जैसे कि कोई आत्मा शारीरिक सुख के लिये इष्ट वस्तु पाने पर मोह ममता व राग में मशगुल बन जाती है, तो कोई आत्मा अनिष्ट वस्तु पाने पर द्वेष से भड़कने लग जाती है, तो कोई आत्मा भौतिकता को बढ़ावा देने सिने गीतों को सुनने में मस्त बनने लग जाती है, तो कोई स्त्री आदि के रूप देखने में मस्त बन जाती है, तो कोई आत्मा भिन्न भिन्न वस्तुओं के स्वाद का आस्वादन करने में लुब्ध बन जाती है, तो कोई पुष्प की सुगंध में मस्त हो जाती है । तो कोई डनलोप की गद्दी व पंखे आदि की हवा में स्पर्शेन्द्रिय द्वारा लुब्ध बन जाती है, ये सभी बहिरात्मा होती हैं । इन्हें आत्मा के ज्ञान दर्शन सुख आदि गुणों पर विश्वास नहीं होता ।

(२) **अन्तरात्मा :-** जिन आत्माओं को ज्ञान, दर्शन, सुख आदि पर अचल श्रद्धा होती है व अपनी शक्ति के अनुसार उन्हें प्राप्त करने के लिये प्रयत्न भी करती हैं । वे अन्तरात्मा कहलाती हैं ।

अन्तरात्मा के तीन भेद होते हैं । (१) अविरत सम्यग्दृष्टि (२) देश विरत (३) सर्वविरत

(१) **अविरत सम्यग्दृष्टि :-** अविरतसम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा के तीन भेद होते हैं ।

(i) **औपशमिक सम्यग्दृष्टि :-** कचरे वाला पानी हो, तो उसमें फिटकड़ी डालने से कचरा नीचे जम जाता है । ऊपर बिल्कुल शुद्ध होता है, वैसे ही जिस आत्मा के अन्दर मिथ्यात्व का उपशम होने से निर्मल आत्म-परिणाम होता है । वह औपशमिक सम्यग् दृष्टि अन्तरात्मा कहलाती है ।

आत्मा के भेद कितने हैं?

आत्मा

परमात्मा

भ्रमरात्मा



1. **प्रकृतिकृत-विरमण**
प्रकृतिकृत

2. **अप्रकृतिकृत-विरमण**
अप्रकृतिकृत

3. **सुभावात्-विरमण**
सुभावात्

4. **असुभावात्-विरमण**
असुभावात्

5. **वैभुव-विरमण**
वैभुव

6. **परिग्रह-विरमण**
परिग्रह

7. **संनित-विरमण**
संनित

8. **संनित-विरमण**
संनित

9. **संनित-विरमण**
संनित

10. **संनित-विरमण**
संनित

11. **संनित-विरमण**
संनित

अणुव्रत

गुणव्रत

शिक्षाव्रत

1. **अणुव्रत**
अणुव्रत

2. **अणुव्रत**
अणुव्रत

3. **अणुव्रत**
अणुव्रत

4. **अणुव्रत**
अणुव्रत

5. **अणुव्रत**
अणुव्रत

6. **अणुव्रत**
अणुव्रत

7. **अणुव्रत**
अणुव्रत

8. **अणुव्रत**
अणुव्रत

9. **अणुव्रत**
अणुव्रत

10. **अणुव्रत**
अणुव्रत

11. **अणुव्रत**
अणुव्रत

बहिर्मात्मा

बहिर्मात्मा का प्रकृतिकृत भवन है।

1. **बहिर्मात्मा**
बहिर्मात्मा

2. **बहिर्मात्मा**
बहिर्मात्मा

3. **बहिर्मात्मा**
बहिर्मात्मा

4. **बहिर्मात्मा**
बहिर्मात्मा

5. **बहिर्मात्मा**
बहिर्मात्मा

6. **बहिर्मात्मा**
बहिर्मात्मा

7. **बहिर्मात्मा**
बहिर्मात्मा

8. **बहिर्मात्मा**
बहिर्मात्मा

9. **बहिर्मात्मा**
बहिर्मात्मा

10. **बहिर्मात्मा**
बहिर्मात्मा

आत्मा के भेद कितने हैं? - 1. परमात्मा, 2. भ्रमरात्मा, 3. अणुव्रत, 4. गुणव्रत, 5. शिक्षाव्रत, 6. बहिर्मात्मा

(ii) **क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि** :- जैसे कचरे वाला मिश्रित पानी हो, वैसे जिस आत्मा के उदय में आने वाले मिथ्यात्व का समकित मोहनीय रूप से क्षय और उदय में नहीं आने वाले मिथ्यात्व का उपशम होता है, वह क्षायोपशम सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा कहलाती है। इस आत्मा को सिर्फ सम्यक्त्व मोहनीय का उदय होता है।

(iii) **क्षायिक सम्यग्दृष्टि** :- जैसे कचरे को बाहर फेंक देने से पानी स्वच्छ निर्मल हो जाता है, वैसे ही जो आत्मा सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्रमोहनीय व मिथ्यात्व मोहनीय का क्षय करती है, वह क्षायिक सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा कहलाती है।

इन आत्माओं को वीतराग भगवान द्वारा पापनिवृत्ति आदि तत्त्वों पर श्रद्धा होती है। मगर कर्म के कारण १२ व्रत में से १ व्रत का भी पालन नहीं कर पाती हैं। इस प्रकार उनका मानस सदा बना रहता है। जैसे श्रेणिक महाराजा।

(२) **देश विरत अन्तरात्मा** :- यह आत्मा सम्यग्दर्शन पूर्वक देश विरति के बारह व्रत या उनमें से कोई-एक व्रत का पालन करती है। १२ व्रत इस प्रकार है। ५ अणुव्रत + ३ गुणव्रत + ४ शिक्षाव्रत = १२ व्रत

५ अणुव्रत :- महाव्रतों की अपेक्षा से छोटे होने से अणुव्रत कहलाते हैं।

(१) **स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत** :- चलते फिरते निरपराधी, निष्कारण, निरपेक्ष भाव से त्रस जीव को मारने की बुद्धि से मारना नहीं व मरवाना नहीं।

(२) **स्थूल मृषावाद विरमण व्रत** :- मनुष्य, पशु व जमीन के विषय में झूठ नहीं बोलना, धरोहर का इन्कार नहीं करना व झुठी साक्षी नहीं देना।

(३) **स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत** :- बड़ी चोरी, डाके डालना वगैरह न करना।

(४) **स्थूल मैथुन विरमण व्रत** :- परस्त्री (पर पुरुष) का त्याग करना।

- (५) **परिग्रह परिमाण व्रत :-** धन, दौलत, मकान, पशु व नोकर आदि का परिमाण करना ।
- (३) गुण व्रत :-** जिनके पालन से ५ अणुव्रतों को गुण यानी लाभ होता हो, वे तीन होते हैं ।
- (१) **दिक्परिमाण :-** चारों दिशा में जाने आने की दूरी किलोमीटर में निश्चित करना, उसके बाहर न जाना । अथवा भारत के बाहर न जाना ।
- (२) **भोगोपभोग परिमाण :-** खाने पीने पहनने आदि वस्तुओं का परिमाण तय करना ।
- (३) **अनर्थ दंड विरमण :-** जीवन जीने में बिन उपयोगी पापकर्म का बन्ध करने वाली वस्तुओं का त्याग करना ।
- (४) शिक्षाव्रत :-** जिनके पालन से ५ अणुव्रत क्रियान्वित होते हैं । वे ४ होते हैं ।
- (१) **सामायिक व्रत :-** कम से कम ४८ मिनट तक हिंसादि का त्याग कर समभाव में रहना ।
- (२) **देशावकाशिक व्रत :-** अेकासणा करके अेक दिन में ८ सामायिक व दो प्रतिक्रमण करना ।
- (३) **पौषध व्रत :-** दिन या रात या दिनरात का पौषध करना ।
- (४) **अतिथि संविभाग :-** उपवास के साथ दिन रात का पौषध करके गुरुमहाराज जो जो वस्तु ग्रहण करे, वेही दुसरे दिन अेकासणे में वापरना ।
- (३) **सर्वविरत अन्तरात्मा :-** जो आत्मा सम्यग्दर्शन पूर्वक पांच महाव्रतों का पालन करती है । जैसे धन्ना अनगार वगैरह । पांच महाव्रत इस प्रकार है ।
- (१) **प्राणातिपात विरमण महाव्रत :-** सूक्ष्म या बादर किसी भी जीव की हिंसा नहीं करना, हिंसा नहीं करवाना व हिंसा करने वाले की अनुमोदना नहीं करना ।

- (२) **मृषावाद विरमण महाव्रत :-** किसी भी प्रकार का झूठ न बोलना, झूठ बुलवाना नहीं व झूठ बोलने वाले को अच्छा नहीं मानना ।
- (३) **अदत्तादान विरमण महाव्रत :-** छोटी बड़ी सभी प्रकार की चोरी का त्याग करना ।
- (४) **मैथुन विरमण महाव्रत :-** स्त्री का सर्वथा त्याग करना । उससे संबद्ध वस्त्र को भी न छुना । इसी प्रकार साध्वीजी पुरुष के विषय में ध्यान रखती है ।
- (५) **परिग्रह विरमण महाव्रत :-** अल्प मूल्य व बहु मूल्य वाली वस्तु आदि सभी प्रकार के परिग्रह का त्याग करना ।

(३) **परमात्मा :** परम यानी सर्वोत्कृष्ट, आत्मा यानी जीव, वे परमात्मा कहलाती हैं ।

परमात्मा के दो भेद होते हैं ।

(१) **अरिहंत परमात्मा :-** विश्व में जितने देहधारी आत्माएँ हैं, उनमें अरिहंत परमात्मा ही सर्वोत्कृष्ट होती है, क्योंकि सामान्य केवलज्ञानियों से इनकी विशेषता होती है । सामान्य केवलज्ञानियों से इनकी विशेषता यह होती है कि इनके ८ महाप्रातिहार्य होते हैं, वाणी में ३५ गुण होते हैं । चलते हैं, तब पैर के नीचे नव कमल देव रखते हैं । देशना मालकोश आदि रागों में देते हैं इत्यादि अनेक विशेषतायें होती हैं । इनके चार घाति कर्म समाप्त हो जाते हैं व तीर्थंकर नाम कर्म का उदय शुरु हो जाता है । ये जीवन्मुक्त परमात्मा कहलाती हैं ।

(२) **सिद्ध परमात्मा :-** संसार में भटकने वाली आत्मा आठ कर्म का क्षय होने पर सिद्ध परमात्मा बन जाती है । **एक शायर** ने कहा है।
चट्टानों की चोट से झरना नदी बन जाता है ।
दंडे के प्रहार से ढोल बजने लग जाता है,
अरिहंत सिद्ध के ध्यान करने से,
यही जीव परमात्मा बन जाता है ।

७ जीव के ५६३ भेद

जैन शासन में जीव-विज्ञान बहुत महत्व रखता है । क्योंकि उसके होने पर हम कई पापों से बच सकते हैं व प्राणातिपात विरमण व्रत का पालन करने में सफल हो सकते हैं । अब हम आपको जैन जीव - विज्ञान यानी जैन बायोलॉजी समझा रहे हैं ।

जीव के दो भेद होते हैं (१) **मुक्त** --आठ कर्म से रहित बन कर मोक्ष में गये हुए जीव, जैसे ऋषभदेव आदि (२) **संसारि** - कर्म के कारण अनेक गति, शरीरादि में संसरण करने वाले यानि भटकने वाले जीव, जैसे हम व पेड़ पौधे आदि । संसारि जीव के दो भेद होते हैं । (१) **स्थावर** (२) **त्रस** ।

(१) स्थावर :- तिष्ठतीत्येवंशील अर्थात् जो एक ही जगह पर स्थिर रहे, सर्दी, गर्मी आदि उपद्रव आने पर भी अपनी इच्छा से जो चल फिर न सके, उसे स्थावर कहते हैं । उसको एक ही स्पर्शेन्द्रिय यानि शरीर ही होता है । इसलिये एकेन्द्रिय व स्थावर कहलाते हैं। इसके मुख्य ५ भेद होते हैं ।

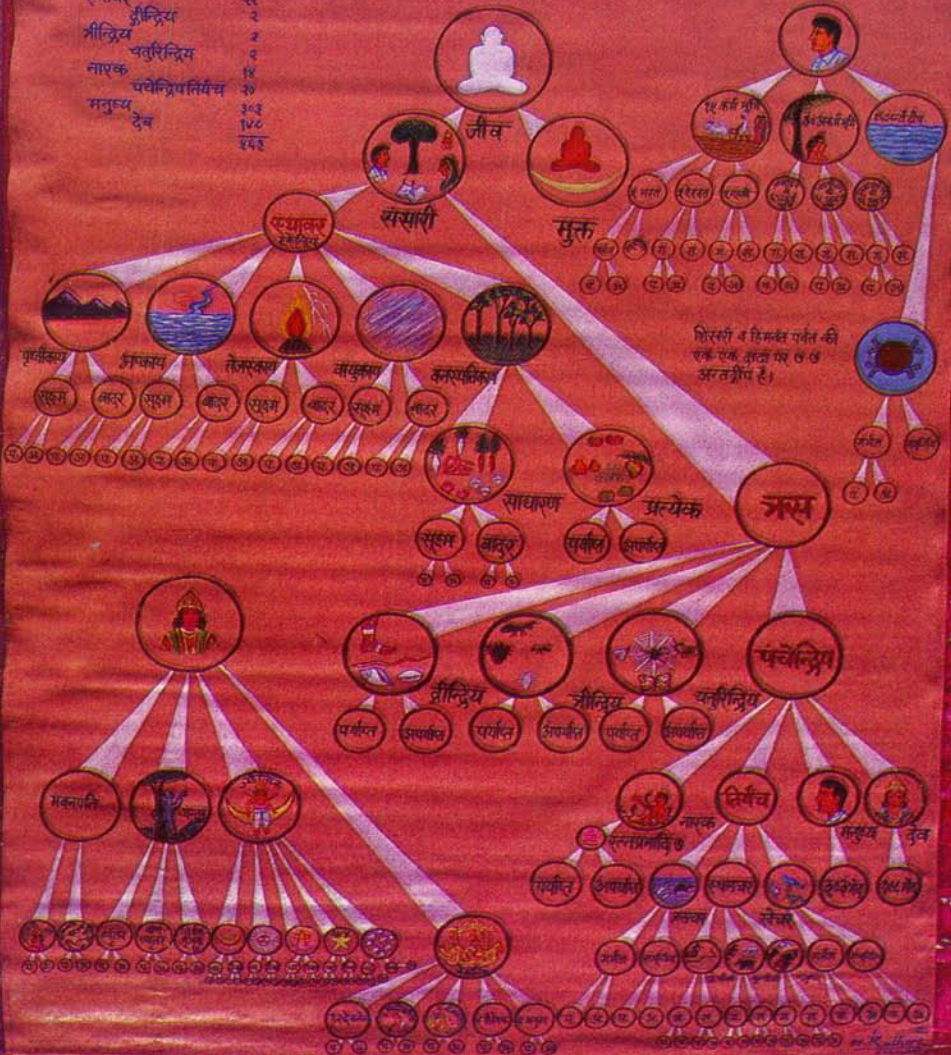
(i) **पृथ्वीकाय :-** यानी पृथ्वी रूपी शरीर को धारण करने वाले जीव, जैसे कि मिट्टी, कच्चा नमक, खान में से निकला हुआ पत्थर, खान में रहा हुआ लोह, सोना आदि धातु । पृथ्वीकाय आदि असंख्य जीवों के शरीर जब इकट्ठे होते हैं । तभी वे दृष्टि गोचर होते है ।

प्रवाल, पारा, रत्न स्फटिक, फिटकरी, अभ्रक आदि । अमरीका के न्यूजर्सीनगर में माइक्रो बायलोजी के अध्यक्ष वाक्समेन ने भी स्वीकार किया है कि चमचभर मिट्टी में असंख्य जीव होते हैं ।

(ii) **अप्काय :-** यानी जल रूपी शरीर को धारण करने वाले जीव, जैसे कि कुंआ, तालाब, नदी, बरसात, झरना आदि का पानी, बादल, ओस, बरफ, धुन्ध आदि । असंख्य अप्काय जीवों के शरीर इकट्ठे

जीव के ५६३ भेद

स्थावर	22
सूक्ष्म	2
मीन्द्रिय	2
यतुरिन्द्रिय	8
नाएक	18
पंचेन्द्रियत्विय	30
मनुष्य	100
देव	243



द्विरसी व द्विरवतं गर्वन की एक एक प्राण पर ७७ अन्तर्गण है।

→ पं. मुनिश्री गृधरनवीनजयजी म. के प्रेरण से श्री जवतप चंद्रकण द्वारा निर्मित

होते हैं, तभी हमें दिखाई देते हैं। जर्मन के विद्वान् एन्ड्रयूड ने कहा है कि २९ ग्राम पानी में इतने स्कन्ध (Molecules) है कि ३ अबज मनुष्य ४० लाख वर्ष तक प्रति मिनिट ३०० की रफ्तार से जब गिने, तब वे गिने जा सकते हैं, जैन दर्शन कहता है कि उस एक एक स्कन्ध (Molecules) में असंख्य जीव होते हैं। कितनी सूक्ष्मता से वर्णन किया गया है जैन दर्शन में।

- (३) **तेजस्काय** :- यानी अग्नि रूपी शरीर को धारण वाले, जैसे कि अग्नि, दीपक, ज्वाला, बिजली व उनके किरण, शोला इत्यादि।
- (४) **वायुकाय** :- यानी हवा रूपी शरीर को धारण करने वाले, जैसे कि हवा, वायु, आंधी इत्यादि।
- (५) **वनस्पतिकाय** :- यानी वनस्पति रूपी शरीर को धारण करने वाले, जैसे कि प्याज व पौधे इत्यादि।
- इसके मुख्य दो भेद होते हैं।
- (१) **प्रत्येक वनस्पतिकाय** :- जिस वनस्पति के एक शरीर में एक जीव होता है, उसे प्रत्येक शरीर वनस्पतिकाय कहते हैं। जैसे कि गेहूँ, खरबूजे के बीज, पेड़, पौधे इत्यादि।
- (२) **साधारण वनस्पतिकाय** :- जिन वनस्पति के एक शरीर में अनन्त जीव होते हैं, उसे साधारण वनस्पतिकाय कहते हैं, जैसे कि प्याज, आलू, मूली, गाजर इत्यादि।

स्थावर के कुल २२ भेद

(१) पृथ्वी काय (२) अप्काय (३) तेजस्काय (४) वायुकाय व (५) साधारण वनस्पतिकाय। उनमें से हरेक के सूक्ष्म व बादर, पर्याप्त व अपर्याप्त दो दो भेद होते हैं।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय :- जिन अनेक जीवों के शरीर इकट्ठे होने पर भी दिखाई न दें एवं न स्पर्श आदि से जाने जा सके, वे सूक्ष्म एकेन्द्रिय

कहलाते हैं। वे संपूर्ण विश्व में टांस टांस कर भरे हुए हैं। लोकाकाश में ऐसी कोई जगह नहीं है, जहां सूक्ष्म अकेन्द्रिय जीव न हो। केवलज्ञानी के सिवाय उनको कोई देख नहीं सकता। वे इतने सूक्ष्म होते हैं कि वे अग्नि लगने पर भी जलते नहीं हैं।

बादर एकेन्द्रिय :- जिन जीवों के शरीर एक या अनेक इकट्ठे होने पर किसी भी इन्द्रिय से जाने जा सके, वे बादर कहलाते हैं। उनमें एक इन्द्रिय वाले जीव बादर एकेन्द्रिय कहलाते हैं। जैसे कि. पानी, मिट्टी, अग्नि, वायु, गेहूं आदि के दाने। उसमें वायुकाय एकेन्द्रिय स्पर्श से ही जाने जाते हैं। अन्य दो इन्द्रिय से लगाकर पांच तक इन्द्रिय से जाने जाते हैं। ये संपूर्ण लोक में व्याप्त नहीं होते। लोक के विशेष भाग में उनका स्थान (क्षेत्र) नियत होता है। शस्त्रों से इनका छेदन भेदन भी होता है। अग्नि से दहन वगैरह होता है। एक दूसरे के साथ उनका टकराव भी होता है। द्वीन्द्रिय आदि सभी जीव बादर ही होते हैं।

पर्याप्त :- जो जीव अपने योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण करके मरते हैं, वे पर्याप्त जीव कहलाते हैं। जैसे कि पैड़, पौधे, पशु, देव, मनुष्य, नारक वगैरह। एकेन्द्रिय जीव के ४, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व असंज्ञी पंचेन्द्रिय के ५ और संज्ञी पंचेन्द्रिय को ६ पर्याप्तियां होती है। इनके नाम इस प्रकार हैं। (१) आहार (२) शरीर (३) इन्द्रिय (४) श्वासोच्छ्वास (५) भाषा (६) मन। पुद्गल परमाणुओं की सहायता से उत्पन्न हुई जीव की आहारादि के ग्रहण व परिणमन आदि की शक्ति पर्याप्ति कहलाती है।

अपर्याप्त :- जो जीव अपने योग्य पर्याप्ति पूर्ण किये बिना ही मर जाते हैं, वे अपर्याप्त जीव कहलाते हैं। विशेष में जब तक जीव अपने योग्य पर्याप्ति पूर्ण नहीं करते, तब तक वे भी अपर्याप्त कहलाते हैं। कोई भी अपर्याप्त जीव प्रथम तीन पर्याप्ति पूर्ण करके ही मरता है।

पृथ्वीकाय आदि में से हरेक के सूक्ष्म, बादर पर्याप्त व अपर्याप्त ४ भेद होने से $५ \times ४ = २०$ भेद होते हैं व प्रत्येक वनस्पति सूक्ष्म नहीं होती, सिर्फ बादर ही होती है। उसके पर्याप्त व अपर्याप्त दो ही भेद होते हैं। इस प्रकार स्थावर के $२० + २ = २२$ भेद होते हैं।

२ त्रस :- जो जीव ठंडी या धूप से व्याकुल होकर अपने आप एक जगह से दूसरी जगह जा सकते हैं, वे त्रस कहलाते हैं। इनके मुख्य चार भेद होते हैं।

(१) **द्वीन्द्रिय :-** जिन जीवों को स्पर्शनेन्द्रिय व रसनेन्द्रिय ये दो इन्द्रियो होती है, वे द्वीन्द्रिय कहलाते हैं। जैसे शंख, कैचुआ, पेट के कृमि, लकड़ी के कीड़े (घून), जलौ, पूतरक (पोरे), बासी भोजन व आचार में उत्पन्न होने वाले जीव वगैरह।

(२) **त्रीन्द्रिय :-** जिन जीवों को स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय व घ्राणेन्द्रिय ये तीन इन्द्रियां होती है, वे त्रीन्द्रिय कहलाते हैं। जैसे कि चीटी, मकोड़े, खटमल, उधेही, जूं, लीक, गींगोड़े, धनोरा, कुथु वगैरह।

(३) **चतुरिन्द्रिय :-** जिन जीवों को स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय व घ्राणेन्द्रिय चक्षुरिन्द्रिय ये चार इन्द्रियां होती हैं, वे चतुरिन्द्रिय कहलाते हैं। जैसे कि मक्खी, भौरें, बिच्छु, मच्छर, डांस, मकड़ी, कंसारी (कणई) वगैरह।

(१) द्वीन्द्रिय (२) त्रीन्द्रिय व (३) चतुरिन्द्रिय ये तीनों जीव पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं। इसलिये हरेक के दो दो भेद होते हैं। अतः $2+2+2=6$ भेद। ये सभी विकलेन्द्रिय भी कहलाते हैं।

एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक सभी जीव तिर्यच गति में गिने जाते है और ये सभी समूर्च्छिम (माता पिता के संयोग बिना ही) उत्पन्न होते हैं।

(४) **पंचेन्द्रिय :-** जिन जीवों को स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय व श्रवणेन्द्रिय ये पांचों इन्द्रियाँ होती हैं, वे पंचेन्द्रिय कहलाते हैं। जैसे कि हाथी, मनुष्य आदि। इसके चार भेद होते हैं। (१) नारक (२) तिर्यच (३) मनुष्य व (४) देव

(१) नारक :- हमारी पृथ्वी के नीचे क्रमशः सात नरक है।

(१) रत्नप्रभा (२) शर्कराप्रभा (३) वालुकाप्रभा (४) पंक-प्रभा (५) धूमप्रभा (६) तमःप्रभा व (७) महातमःप्रभा ।

इनमें रहने वाले जीव क्रमशः ७ प्रकार के नारक कहलाते हैं । वे पर्याप्त व अपर्याप्त होते हैं । अतः $7 \times 2 = 14$ भेद हुए ।

मांस खाने वाले, पंचेन्द्रियों की हत्या करने वाले, महापरिग्रह रखने वाले, महान् हिंसा करने वाले ऐसे रौद्र परिणाम से जीव नरक में उत्पन्न होता है । वहां भयंकर गर्मी, भयंकर सर्दी व रोग आदि के भयंकर कष्ट नारक जीव को भुगतने पड़ते हैं ।

(२) तिर्यंच पंचेन्द्रिय :- मगरमच्छ, सर्प, नेवले, हाथी, पक्षी आदि तिर्यंच पंचेन्द्रिय कहलाते हैं । इनके मुख्य ३ भेद नीचे मुताबिक होते हैं ।

(१) **जलचर :-** जो पंचेन्द्रिय जीव पानी में रहते हैं, वे जलचर कहलाते हैं, जैसे कि मगर, मछली, कछुआ आदि ।

(२) **स्थलचर :-** जो जीव जमीन पर चलते हैं, जैसे कि सर्प, अजगर आदि । इसके तीन भेद होते हैं ।

(i) **उरःपरिसर्प :-** जो पेट से चलते हैं, जैसे कि सर्प, अजगर आदि ।

(ii) **भुज परिसर्प :-** जो भुजाओं से चलते हैं, जैसे कि चूहे, नेवले, बंदर, गिलहरी, चिपकली ।

(iii) **चतुष्पद :-** जिनके चार पैर होते हैं, जैसे कि हाथी, गाय, घोड़े बैल आदि ।

(३) **खेचर :-** जो आकाश में उड़ते हैं, जैसे कि चिड़िया, कौए, तोते, कबूतर, उल्लू, चमगादड़ इत्यादि ।

(१) जलचर (२) उरःपरिसर्प (३) भुजपरिसर्प (४) चतुष्पद (५) खेचर । ये सभी गर्भज व समूर्च्छिम होते हैं । इसलिये $5 \times 2 = 10$ भेद एवं प्रत्येक के पर्याप्त व अपर्याप्त दो दो भेद होते हैं ।

इसलिये $90 \times 2 = 20$ । उनमें गर्भज यानि माता पिता के संयोग से गर्भ द्वारा उत्पन्न होते हैं । समूर्च्छिम यानी माता पिता के संयोग के बिना ही स्वाभाविक उत्पन्न होते हैं ।

इस प्रकार तिर्यच पंचेन्द्रिय के 20 भेद । निम्नलिखित होते हैं ।

- (१) पर्याप्त गर्भज जलचर (२) अपर्याप्त गर्भज जलचर (३) पर्याप्त समूर्च्छिम जलचर (४) अपर्याप्त समूर्च्छिम जलचर (५) पर्याप्त गर्भज उरःपरिसर्प (६) अपर्याप्त गर्भज उरः परिसर्प (७) पर्याप्त समूर्च्छिम उरःपरिसर्प (८) अपर्याप्त समूर्च्छिम उरःपरिसर्प (९) पर्याप्त गर्भज भुजपरिसर्प (१०) अपर्याप्त गर्भज भुजपरिसर्प (११) पर्याप्त समूर्च्छिम भुजपरिसर्प (१२) अपर्याप्त समूर्च्छिम भुजपरिसर्प (१३) पर्याप्त गर्भज चतुष्पद (१४) अपर्याप्त गर्भज चतुष्पद (१५) पर्याप्त समूर्च्छिम चतुष्पद (१६) अपर्याप्त समूर्च्छिम चतुष्पद (१७) पर्याप्त गर्भज खेचर (१८) अपर्याप्त गर्भज खेचर (१९) पर्याप्त समूर्च्छिम खेचर (२०) अपर्याप्त समूर्च्छिम खेचर ।

खेचर (नभचर) दो प्रकार के होते हैं ।

- (१) सोंगटे से बने हुए पंख वाले खेचर, जैसे कबूतर, चिड़ियाँ, कौए, पोपट, मोर आदि । (२) चमड़े की पंख वाले खेचर, जैसे कि चमगादड़ । अथवा अन्य रीति से २ प्रकार इस प्रकार होते हैं ।
- (१) वितत पंख वाले खेचर - जब उड़ते हैं या बैठते हैं, तब पंख फैले हुए होते हैं । (२) जुड़े हुए पंख वाले खेचर, उड़ते हो या बैठे हो, तब पंख फैले हुए नहीं होते, जुड़े हुए होते हैं । ये दो भेद वाले खेचर मनुष्य लोक के बाहर होते हैं । खेचरों की इन दो उपभेदों की गिनती स्थलचर के भेदों की तरह तिर्यच पंचेन्द्रिय के २० भेद में नहीं की गई है ।

मनुष्य के ३०३ भेद :- हम मनुष्यलोक में है । मनुष्य लोक के मध्य में जम्बूद्वीप है, हम जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में है । जम्बू द्वीप के चारों ओर कंगन के आकारवाला लवण समुद्र है । उसके चारों ओर कंगन के आकार में घातकी खंड नाम का द्वीप है । उसके चारों ओर कंगन के आकार में कालोदधि समुद्र है । उसके चारों ओर कंगन के आकार वाला पुष्करवर द्वीप है । इसका विभाजन दो भागों में चारों ओर कंगन के आकारवाले मानुषोत्तर पर्वत से होता है ।

(१५) कर्म भूमि :- जहाँ पर व्यापार, खेती, शस्त्रों से युद्ध व राज्यादि की व्यवस्था व मोक्षसाधक चारित्र होते हैं, वे कर्म भूमि कहलाती है । वे जम्बू द्वीप में १ भरत + १ ऐरवत + १ महाविदेह = ३ कर्म भूमि है । घातकी खंड में २ भरत + २ ऐरवत + २ महाविदेह = ६ कर्म भूमि है । पुष्कर वर द्वीपार्ध में २ भरत + २ ऐरवत + २ महाविदेह = ६ कर्म भूमि है । उनमें उपर्युक्त रीति से ५ भरत, ५ ऐरवत व ५ महाविदेह होने से १५ कर्मभूमि हैं ।

(३०) अकर्म भूमि :- जहाँ पर व्यापार, खेती, शस्त्रों से युद्ध, राज्यादि की व्यवस्था व मोक्ष साधक चारित्र नहीं होता है, वे अकर्मभूमि कहलाती हैं । वहाँ युगलिक मनुष्य होते हैं । जम्बू द्वीप में ^१हिमवंत ^१हरिवर्ष + ^१देवगुरु + ^१उत्तरकुरु + ^१रम्यक्षेत्र + ^१हिरण्यवंत = ^६ अकर्म भूमि हैं । घातकी खंड में ^२हिमवंत + ^२हरिवर्ष + ^२देवकुरु + ^२ उत्तरकुरु + ^२ रम्यक्षेत्र + ^२ हिरण्यवंत = ^{१२} अकर्मभूमि है । और पुष्करवर द्वीपार्ध में ^२हिमवंत + ^२ हरिवर्ष + ^२ देवकुरु + ^२ उत्तरकुरु + ^२ रम्यक्षेत्र + ^२हिरण्यवंत = ^{१२} अकर्मभूमि है । इस प्रकार ६ + १२ + १२ = ३० । उनमें उपर्युक्त रीति से कुल ^१हिमवंत, ^१हरिवर्ष, ^१देवकुरु, ^१उत्तरकुरु, ^१रम्यक्षेत्र, ५ हिरण्यवंत कुल ३० अकर्म भूमि होती है ।

(५६) अन्तर्द्वीप - लघु हिमवंत और शिखरी पर्वत में से पूर्व व पश्चिम में दो दो दाढाएँ (दाढ की आकृति के दो - दो पर्वतीय भाग) लवण समुद्र में गये हैं अर्थात् ८ दाढाएँ लवण समुद्र में गई

है। एक - एक दाढ़ा पर ७-७ अन्तर्द्वीप होने से $2 \times 7 = 14$ अन्तर्द्वीप हुए। हमने आपको मनुष्य का क्षेत्र बता दिया है। अब हम आपको मनुष्य के भेद बता रहे हैं। (१) १५ कर्म भूमि के मनुष्य (२) ३० अकर्म भूमि के मनुष्य (३) ५६ अन्तर्द्वीप के मनुष्य होने से कुल मनुष्य के कुल १०१ भेद होते हैं। उनमें से हरेक मनुष्य के गर्भज व समूर्च्छिम दो - दो भेद होते हैं।

(१) **गर्भज मनुष्य :-** जो माता पिता के संयोग से उत्पन्न होते हैं, जैसे हम। गर्भज मनुष्य के दो भेद होते हैं। (१) पर्याप्त (२) अपर्याप्त। इसलिए $101 \times 2 = 202$ भेद हुए। इस प्रकार १०१ पर्याप्त गर्भज मनुष्य हुए।

(२) **समूर्च्छिम मनुष्य :-** जो माता पिता के संयोग के बिना ही मल, मूत्र, वीर्य वगैरह में उत्पन्न होते हैं। वे अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। किसी भी यंत्र से दिखाई नहीं देते। अन्तर्मुहूर्त = ४८ मिनट के अन्दर मर जाते हैं। वे सभी अपर्याप्त ही होते हैं। इसलिये समूर्च्छिम मनुष्य के १०१ भेद ही होते हैं।

101 पर्याप्त गर्भज मनुष्य + 101 अपर्याप्त गर्भज मनुष्य + 101 अपर्याप्त समूर्च्छिम मनुष्य = 303 मनुष्य के कुल भेद होते हैं।

प्रश्न :- समूर्च्छिम मनुष्य कहां उत्पन्न होते हैं।

उत्तर :- गर्भज मनुष्यों के मल (टट्टी), मूत्र, कफ, झूठा भोजन, थुक आदि, श्लेष्म, वमन (कै), मृतकलेवर, खून, वीर्य, स्त्री का जनन प्रदेश, आंख का मैल, नाक का मैल, कान का मैल, पसीना, नगर के खाल (गटर) आदि में उत्पन्न होते हैं। इनके पांच इन्द्रियाँ होती हैं, मगर मन नहीं होता, इसलिये असंज्ञी कहलाते हैं। इनका शरीर अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण होने से सूक्ष्म होता है। इसलिए वे यंत्र से नहीं दिखते। इनका आयुष्य अन्तर्मुहूर्त होता है और अपने योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण करने के पहले ही मर जाते हैं। इसलिए अपर्याप्त कहलाते हैं।

प्रश्न :- समूर्च्छिम मनुष्य की हत्या से बचने के लिये क्या करना चाहिये ?

उत्तर :- (१) जहाँ तक हो सके, पिशाब घर में पिशाब न करके खुली जगह में करना चाहिये । (२) शौच जाने के लिये खुली जगह मिल सकती हो, तो शौचालय में नहीं जाना चाहिये । (३) कप, श्लेष्म व थुकने के बाद उसमें मिट्टी पैर आदि से मिला देनी चाहिये । (४) पानी पीने के बाद झूठा लोटा या गिलास मटकी में नहीं डालना चाहिये । रुमाल वगैरह से पोंछकर डालना चाहिये । (५) भोजन करने के बाद थाली धोकर पानी पी लेना चाहिये । (६) भोजन के बाद अन्न झूठा नहीं छोड़ना चाहिये । (७) पसीने के कपड़े शीघ्र सूखा देने चाहिये ।

देव के १९८ भेद

देव के मुख्य रूप से ४ भेद होते हैं । (१) भवनपति (२) व्यंतर (३) ज्योतिष (४) वैमानिक ।

(१) भवनपति :- वर्तमानकाल में जिस पर हम स्थित है, इस रत्नप्रभा पृथ्वी की मोटाई १,८०,००० योजन (१ योजन = ४ कोश) है । उसके ऊपर के १००० योजन व नीचे के १००० योजन छोड़कर बीच में भवनपति देव है, वे विमान में नहीं रह कर भवन में रहते हैं । इसलिये वे भवनपति कहलाते हैं । इनके मुख्य रूप से दो भेद होते हैं ।

(i) **असुरकुमार आदि :-** ये सभी पूर्वोपार्जित पुण्य से दैविक सुख का उपभोग करते हैं । इनके १० भेद होते हैं ।

(ii) **परमाधामी -** यद्यपि ये भी असुरकुमार देव ही होते हैं । किंतु ये नरक के जीवों को कौतुकता से दुःख देकर आनंद मानते हैं । इसलिये दुःख देने का कार्य होने से इनका अलग भेद बताया है । इनके १५ भेद होते हैं । इस प्रकार भवनपति के $१० + १५ = २५$ कूल भेद हुए । वे सभी पर्याप्त व अपर्याप्त होने से $२५ \times २ = ५०$ भेद होते हैं ।

(२) **व्यंतर :-** इनके मुख्य ३ भेद होते हैं ।

(१) **व्यंतर :-** रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के १००० योजन में से ऊपर के १०० योजन व नीचे १०० छोड़कर बीच के ८०० योजन में व्यंतर देवों के रमणीय स्थान होते हैं । इनके ८ भेद होते हैं ।

(२) **वाणव्यंतर :-** यह व्यंतर जाति का ही उपभेद है । रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के १०० योजन में से ऊपर के १० योजन व नीचे के १० योजन छोड़कर बीच के ८० योजन में वाणव्यंतर देव रहते हैं । उनके ८ भेद होते हैं ।

(३) **तिर्यग्जुंभक :-** ये भी देव व्यंतर निकाय के ही होते हैं । किन्तु ये तीर्थंकर भगवान के जन्म व वर्षीदान आदि प्रसंग पर बिना मालिक के धन, धान्य, सुवर्ण, रत्न आदि दूसरी जगह से लाकर खजाने में रखते हैं । इनके १० भेद होते हैं ।

इस प्रकार व्यंतर के $८+८+१०=२६$ भेद हुए। वे सभी पर्याप्त अपर्याप्त होते हैं । इसलिये $२६ \times २=५२$ भेद व्यंतर देव के होते हैं।

(३) ज्योतिष :- समभूतला पृथ्वी से ७९० से ९०० योजन की ऊंचाई में ज्योतिष देवों के विमान होते हैं । उनके (१) सूर्य (२) चंद्र (३) ग्रह (४) नक्षत्र व (५) तारे, इस प्रकार ५ भेद होते हैं । उनमें से हरेक के चर व स्थिर दो दो भेद होते हैं । इसलिये ज्योतिष के $५ \times २=१०$ भेद होते हैं । वे सभी पर्याप्त व अपर्याप्त हैं। अतः ज्योतिष के कुल $१० \times २=२०$ भेद होते हैं ।

चर=ढाई द्वीप में चन्द्र, सूर्य वगैरह जिन ज्योतिष देव के विमान मेरु पर्वत के चारों ओर प्रदक्षिणा के क्रम से घूमते हैं । उनमें रहने वाले ज्योतिष देव चर कहलाते हैं । ढाई - द्वीप के बाहर चन्द्र, सूर्य वगैरह स्थिर रहते हैं, वे स्थिर कहलाते हैं ।

(४) वैमानिक :- समभूतला पृथ्वी से १ राजलोक तक व उसकी ऊंचाई के ऊपर विमान में रहने वाले देव वैमानिक कहलाते हैं । इसके मुख्य रूप से दो भेद होते हैं । (१) कल्पोपपन्न (२) कल्पातीत ।

१ कल्पोपपन्न :- जहां पर इन्द्र, सामानिक, सेनापति, सैन्य,

आदि की व्यवस्था होती हैं और तीर्थकर के कल्याणक के अवसर पर जिनके आने का आचार होता है। वे कल्पोपपन्न देव कहलाते हैं। उसके मुख्य ३ भेद व उत्तर भेद २४ होते हैं। वे इस प्रकार हैं।

(१) १२ देवलोक + (२) ९ लोकान्तिक + (३) ३ किल्बिषिका ये सभी २४ भेद पर्याप्त व अपर्याप्त होते हैं। इसलिये $24 \times 2 = 48$ भेद होते हैं।

(१) १२ देवलोक के नाम इस प्रकार हैं।

(१) सौधर्म (२) ईशान (३) सनत्कुमार (४) महेन्द्र (५) ब्रह्मलोक (६) लान्तक (७) महाशुक्र (८) सहस्त्रार (९) आनत (१०) प्राणत (११) आरण व (१२) अच्युत।

(२) लोकान्तिक :- ये पांचवे देवलोक के देव होते हैं, ये एक ही मनुष्य भव करके मोक्ष में जाने वाले होते हैं, इसलिये लोक यानी संसार, उसके अन्त में रहे हुए लोकान्तिक कहलाते हैं। तीर्थकर भगवान द्वारा दीक्षा ग्रहण करने के १ वर्ष पहले दीक्षा ग्रहण करने हेतु विनंति करने के लिये देव आते हैं। इनके ९ भेद होते हैं।

(३) किल्बिषिक :- हल्की जाति के देव जो देवलोक में ढोल बजाते हैं झाड़ू निकालते हैं, इत्यादि तुच्छ काम करते हैं। वे किल्बिषिक कहलाते हैं। उसके ३ भेद होते हैं। (१) पहले व दूसरे देवलोक (२) तीसरे देवलोक व (३) छठे देवलोक के नीचे होते हैं।

(२) कल्पातीत :- जहाँ पर इन्द्र, सामानिक देव आदि की व्यवस्था नहीं होती और तीर्थकर जन्म आदि के अवसर पर भी अपना स्थान छोड़ कर नीचे नहीं आते। उनके मुख्य भेद दो होते हैं।

(१) ग्रैवेयक (२) अनुत्तर।

(१) ग्रैवेयक :- बारहवें देवलोक के ऊपर क्रमशः नौ ग्रैवेयक हैं, इसलिये ग्रैवेयक के ९ भेद होते हैं।

(२) अनुत्तर :- ग्रैवेयक के ऊपर समानतल पर चारों दिशा में विजय

आदि व बीच में सर्वार्थ सिद्ध विमान होने से अनुत्तर के ५ भेद होते हैं । अतः कल्पातीत के भेद $९+५=१४$ होते हैं । वे सभी पर्याप्त व अपर्याप्त होते हैं । इसलिये कल्पातीत के कुल भेद $१४+२=२८$ भेद हुए । इस प्रकार वैमानिक के कुल भेद $४८+२८=७६$ हुए ।

इस प्रकार देव के कुल भेद :- भवनपति के कुल भेद ५० + व्यंतर के कुल भेद ५२ + ज्योतिष के कुल भेद २० + वैमानिक के कुल भेद ७६ = कुल १९८ देव के भेद होते हैं ।

संसारी जीव के कुल भेद :- स्थावर के २२ भेद + द्वीन्द्रिय के २ भेद + त्रीन्द्रिय के २ भेद + चतुरिन्द्रिय के २ भेद + पंचेन्द्रिय तिर्यच के २० भेद + नारक के १४ भेद + मनुष्य के ३०३ भेद + देव के १९८ भेद = ५६३ भेद हुए ।

सावधानी :

**जीवों के भेद जानकर
जीवों की हिंसा के त्याग का
संकल्प करना चाहिए ।**

८ क्या वनस्पति (पेड़ पौधों) में जीव होता है

जैसे हमें पानी वगैरह मिलने से हम जीवित रहते हैं और बढ़ते हैं व न मिलने पर दुबले पतले होकर मर जाते हैं, वैसे ही पेड़ पौधे आदि वनस्पति को भी पानी वगैरह मिलने से वे जिन्दा रहती है व न मिलने पर मुरझा कर सूख जाती है। कभी कभी पानी वगैरह मिलने पर भी आयुष्य पूर्ण होने पर भी सूख जाती है, जैसे हम भी आहार वगैरह मिलने पर भी आयुष्य पूर्ण होने पर मर जाते हैं।

ढाई हजार वर्ष तक वैज्ञानिक वनस्पति में जीव नहीं मानते थे। परंतु जब डॉ. जगदीशचन्द्र बोस ने दो सौ वर्ष पहले केस्कोग्राफ यन्त्र से सिद्ध करके बताया कि वनस्पति के अन्दर जीव है (Vegetables have lives) तब से पेड़ पौधे व वनस्पति में भी वैज्ञानिक जीव मानने लगे हैं।

पेड़ पौधों को भी निद्रा, लज्जा, हर्ष, शोक वगैरह होते हैं। जब लाजवंती वनस्पति के पास मनुष्य जाता है, तब वह सिकुड़ जाती है। इतना ही नहीं, कुछ वनस्पतियाँ जीवभक्षी भी होती है और उन्हें भावों का पता चलने पर वे भक्षण कर लेती है। जैसे नार्थ अमेरिका में वीनस नाम का पौधा है। उसके पत्ते पर जब मधु मक्खी वगैरह बैठती है, तब वह पौधा अपने पत्ते सिकुड़ कर उसे घेरने लगता है। घेर कर उसको मार डालता है और कलेवर को पत्ते खोल कर फेंक देता है।

इंग्लैंड में सनड्यु नाम के पौधे पर लाल रंग के रोयें होते हैं। उनके ऊपर पीले रंग का पदार्थ होता है। उस पर जब कोई मधु मक्खी बैठती है, तो लाल रोयें उसे घेर कर चूस लेते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि पानी की बूंद या कंकर वगैरह उन पर गिरने से कोई प्रतिक्रिया नहीं होती।

नोर्थ अमेरिका में पीचर प्लान्ट नाम का पौधा है। अपने भोजन योग्य कीड़ा अन्दर आने पर वह वापस निकलने की सहायता बंध कर देता है और अपने द्रव में पचा लेता है।

क्या वनस्पति (पेड़-पौधों) में जीव होता है?

भगवान महावीर ने करीब २५ हजार वर्ष पहले कहा था कि पेड़-पौधों में जीव होता है व उन्हें भी निद्रा पीड़ा और हर्ष होता है।



भ. महावीर ने कहा कि वनस्पति को निद्रादि भावों (अपभ्रमण) के कारण तन्य बंध होता है।

डॉ. जगदीश चन्द्र बोस ने करीब १९० वर्ष पहले ही सिद्ध किया कि पेड़-पौधों में जीवन होता है और उस पर निद्रा, वायु भोजन, विष आदि का प्रभाव पड़ता है। उन्हें भी हर्ष व पीड़ा का अनुभव होता है।



डॉ. जगदीश चन्द्र बोस १८५८-१९३७ क्रिस्त्वैफोन यन्त्र से विद्युत आदि का स्वीकार

वीनस



सनड्यू

इंग्लैंड में सनड्यू पौधे की पत्तियों पर लाल रींछे होते हैं। उनके ऊपर पीले रंग का द्रव पदार्थ होता है। उस पर कोई मधुमक्खी बैठती है, तो लाल रींछे उसे घेर लेते हैं। और उसे चूस लेते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि वारिस की बूंद या कंकड़ गिरने पर कोई परिवर्तन नहीं होता।

[E.V.M. Knight's
The Golden Nature Reader]



नार्थ अमेरिका में 'वीनस पौधा' होता है। वह मधुमक्खियों को पकड़ लेता और घेर कर मार डालता है।

[विश्व कोश]

पीचर प्लान्ट



नार्थ अमेरिका में पीचर प्लान्ट होता है। अपने भोजन योग्य कीड़ा अन्दर आने पर वापिस निकलने की सहायता बंध कर देता है और अपने द्रव में उसे पचा लेता है।

[E.V.M. Knight's
The Golden Nature Reader]

आजकल रूसके डॉ. वेन्केस्टर भी कह रहे हैं कि पौधों के भी भाव होते हैं।

पू. मुनि श्री गुणरत्न विजयजी म.सा.के सदुपदेशसे शा.मूल चंदजी ने नमलजी शिवगंज द्वारा निर्मित।

रुस के आधुनिक वैज्ञानिक बेन्केस्टर ने भी कहा है कि पौधों को भी भाव होते हैं। भगवान महावीर ने ढाई हजार वर्ष पहले और ऋषभदेव भगवान ने असंख्यात वर्ष पहले कहा था कि "वणप्फईया जीवा" कितना ऊंचा व सत्य तत्त्व जैन दर्शन में है, यह इससे सिद्ध होता है। भगवान महावीर स्वामी के पास लायब्रेरी व लेबोरेटरी नहीं थी, फिर भी ज्ञान के बल से सैंकड़ों वर्ष पहले वनस्पति में जीव की प्ररूपणा की थी। जिससे हमें यह पहले ही उत्तम तत्त्वज्ञान प्राप्त हुआ है। ऐसा तो नहीं है कि पहले जीव वनस्पति में नहीं था और अब है। वैज्ञानिक तो अभी २०० वर्षों से ही वनस्पति में जीव मान रहे हैं। जब कि तीर्थंकरों ने असंख्यात वर्षों से पहले प्ररूपणा की थी। अतः भगवान के तत्त्वज्ञान पर अवश्य अद्भुत श्रद्धा सब को होनी चाहिये। वैज्ञानिकों ने वनस्पति में जीव मान भी लिया है। तो भी उसकी हत्या आदि में कोई फर्क नहीं आया है। तीर्थंकर भगवान ने वनस्पति में जीव को समझा कर आठम चौदश आदि को उनके त्याग का उपदेश दिया। इसलिये आज हम उनकी हिंसा से बच रहे हैं।

९ कौन-कौन से जीव कहाँ उत्पन्न होते हैं ?

वास्तविक तत्त्व को नहीं जानने वाले कई लोग यह मानते हैं कि मनुष्य में से मनुष्य ही बनता है, जानवर में से जानवर ही बनते हैं। कीड़े मकोड़ों में से कीड़े मकोड़े ही बनते हैं। जैसे गेहूँ में से गेहूँ बनते हैं।

यह उनकी बात ठीक नहीं है। क्योंकि मनुष्य में से ही मनुष्य बनते हो, तो आज कल मनुष्य बढ़ते क्यों जा रहे हैं ? पहले भारत की आबादी ४० करोड़ थी और अब १०० करोड़ कैसे हो गई ? विश्व के कोने कोने में मनुष्यों की संख्या क्यों बढ़ रही है ? इसलिये यह समझना जरूरी है कि जैसे गेहूँ में से गेहूँ उत्पन्न होते हैं, वैसे ही गोबर में से बिंछी भी उत्पन्न होते हैं। अर्थात् भिन्न वस्तु में से भिन्न जीव उत्पन्न हो सकते हैं। इसलिये मनुष्य बनने के बाद भयंकर क्रोध वगैरह करने से सर्प, शेर आदि तिर्यच आदि गति में उत्पन्न होने की कोई आपत्ति नहीं है।

(१) **मनुष्य** :- पुण्य कर्म करने से मनुष्य गति व देव गति में और पाप कर्म करने से तिर्यच व नरक गति में उत्पन्न होता है जैसे (१) भगवान महावीर का जीव विश्वभूति मनुष्य पुण्य करके महाशुक्र देवलोक में देव बना। (२) २२ वे भव में पुण्य करने से २३ वें भव में प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती मनुष्य बना। (३) चंड कौशिक तापस मनुष्य पाप करने से मरकर तिर्यच गति में सर्प बना। (४) महावीर स्वामी का जीव त्रिपृष्ठ वासुदेव पाप करके मर कर ७वीं नरक में गया।

(२) **देव** :- पुण्य करने से मनुष्य गति में व पाप करने से तिर्यच गति में देव उत्पन्न होता है। जैसे (१) भगवान महावीर स्वामी का जीव महाशुक्र देवलोक का देव त्रिपृष्ठ वासुदेव के रूप में मनुष्य के रूप में उत्पन्न हुआ। व (२) आठवें देवलोक तक के कई देव पाप करके तिर्यच में उत्पन्न होते हैं।

कौन-कौन से जीव कहाँ उत्पन्न होते हैं।

मनुष्य



देव



शौ से मै



मनुष्य



तिर्यच (गाय)।



देव



नारक



गावर से बिच्छु



तिर्यच (गाय)



नारक



पृथ्वी श्री गुणरत्न विजय जी मसा के सदुपदेश से शा बाबुलाल जी सांकल चंद जी तखतगढ़ द्वारा निर्मित.

(३) **तिर्यच :-** पुण्य करने से मनुष्य गति व देवगति में तिर्यच उत्पन्न होते हैं व पाप करने से नरक और तिर्यच में उत्पन्न होते हैं । जैसे
(१) यशोधर राजा का जीव तिर्यच मुर्गा पुण्य करके मनुष्य बना
(२) कम्बल शम्बल तिर्यच बैल मर करके देव बने, (३) भगवान महावीर स्वामी का जीव सिंह पाप करके मरकर के नरक मे गया।
(४) रूपसेन का जीव पाप करने से सर्प बन कर पुनः पाप करने से कौआ बना।

(४) **नारक :-** मरकर नारक व देव नहीं बनता । वह पाप करने पर तिर्यच व पुण्य करने पर मनुष्य ही बनता है । (१) जैसे भगवान महावीर स्वामी का जीव सातवीं नरक में से २० वे भव में सिंह बना (२) श्रेणिक महाराजा का जीव नारक में से पुण्य करके मनुष्य बनेगा ।

शुभ गति पुण्य से व अशुभ गति पाप से प्राप्त होती है । हमेशा एक ही गति में रहने की कोई मोनोपोली या सजा नहीं है । इसलिये सद्गति के लिये पुण्य व दुर्गति के लिये पाप कारण है।

१०. आध्यात्मिक विकास कार्यक्रम

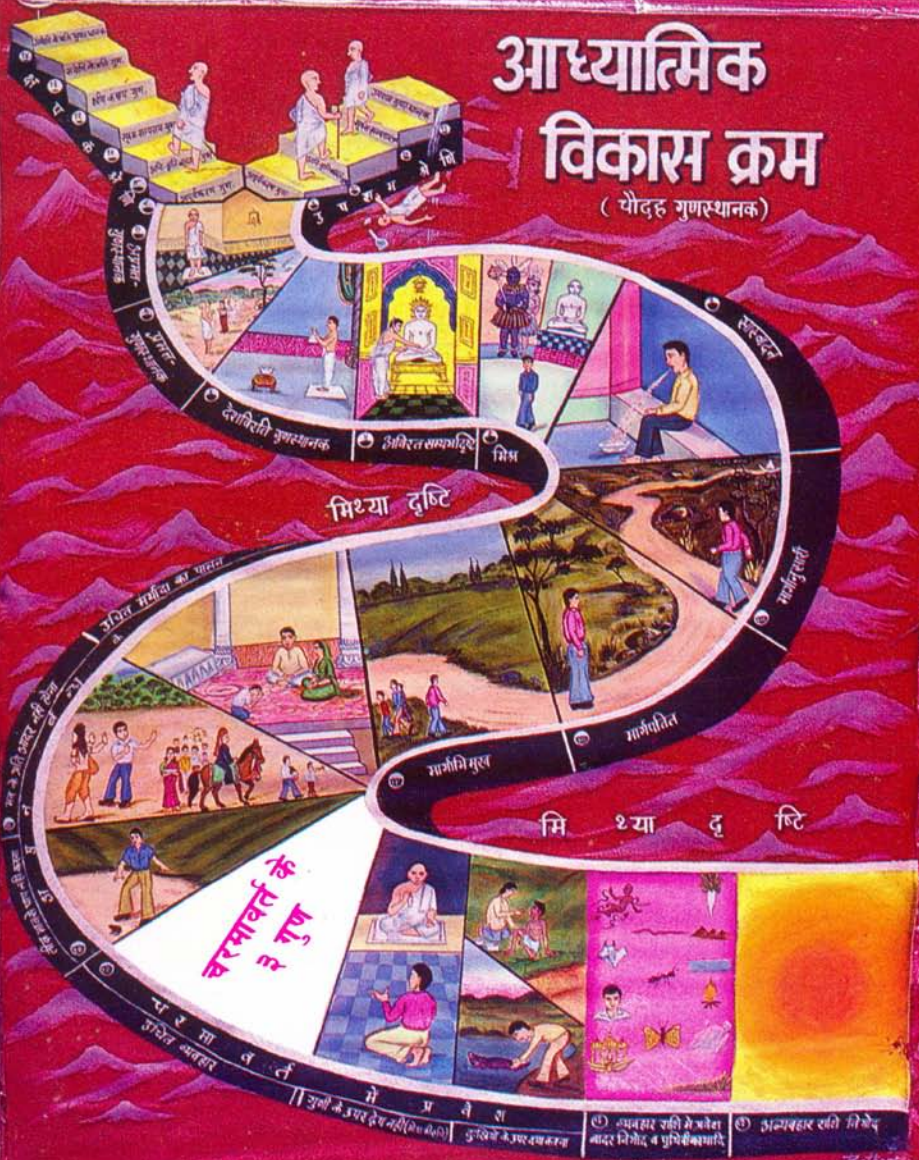
जीव कभी था नहीं, नहीं है और नहीं होगा, ऐसा नहीं है, यानी अनादि काल से संसार में जीव था, है और रहेगा। वह अनादि काल से कर्म के संयोग से युक्त है। कभी ऐसा हुआ नहीं कि वह कर्म संयोग से मुक्त होकर वापस कर्म संयोग से युक्त बन गया हो। अब यह प्रश्न होता है कि अनादिकाल से जीव कहां रहता है ? इसका उत्तर यह है कि वनस्पतिकाय का अेक विभाग सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकाय जिसे सूक्ष्म निगोद कहते हैं। वहां पर अपने आयुष्य कर्म के अनुसार जन्म व मरण करता रहता है। वहां रज से भी छोटे कण यानी अगुंल के असंख्यातवें भाग प्रमाण शरीर में ऐसे अनन्त जीव रहते हैं। आयुष्य पूर्ण होने पर जैसे ही अेक शरीर में अनन्त जीव उत्पन्न हो जाते हैं, इसी प्रकार वहां यह जीव जन्म मरण करता रहता है। जब तक यह जीव वहाँ से बाहर निकल कर बादर निगोद - पृथिवीकाय वगैरह में जन्म नहीं पाता, तब तक वह जीव अव्यवहार राशि निगोद के रूप में पहचाना जाता है। अव्यवहारराशि निगोद राजलोक में टूसटूस कर भरी हुई है। हरेक जीव ने अव्यवहार राशि निगोद में ही अनंत पुद्गल परावर्तन तक जन्म मरण किये हैं। वहां से बाहर निकल कर जब मूली, गाजर वगैरह बादर निगोद और पृथिवीकाय वगैरह में उत्पन्न हो या बादर निगोद में उत्पन्न होकर वापस सूक्ष्म निगोद में चला भी जाता है, तो भी वह व्यवहार राशि का ही जीव कहलाता है।

प्रश्न :- अव्यवहार राशि में से जीव कब बाहर निकलता है ?

उत्तर :- जब विश्व में कोई एक जीव सब कर्म का नाश करके मोक्ष में जाता है। तब एक जीव अव्यवहारराशि का त्याग करके बाहर निकल कर व्यवहार राशि बादर निगोद वगैरह में आता है। वास्तव में तो जीव अपनी भवितव्यता से बाहर निकलता है। परंतु व्यवहार नय से सिद्ध भगवान के निमित्त से बाहर निकलता है। यदि एक जीव सिद्ध नहीं बनता है, तो वह बाहर नहीं निकलता है। बाहर निकलने वाले जीव

आध्यात्मिक विकास क्रम

(चौदह गुणस्थानक)



प. मतिशी ज्ञान-विकासनी म. के सदपदेश से शिवानं निवाणी गा चनीलालजी वसाली द्वारा निर्मित

भव्य भी होता हैं और अभव्य भी । जिस जीव में मोक्ष में जाने की योग्यता होती है, वह भव्य जीव कहलाता है । जिस जीव में मोक्ष में जाने की योग्यता नहीं होती, वह अभव्य कहलाता है । अनन्त भव्य जीव ऐसे भी होते हैं कि वे कभी भी अव्यवहार राशि से बाहर नहीं निकलते, लेकिन वे भव्य जीव कहलाते हैं । विकास क्रम वाले चित्र में प्रथम विभाग में केसरी रंग से सूक्ष्म अव्यवहारराशि निगोद दिखाई है, उसके बाद बादर के विभाग में यानी सूक्ष्म अव्यवहारराशि में से निकल कर जीव बादर निगोद मूली वगैरह में, उसके बाद पृथ्वीकाय, अप्काय, तेऊकाय, वायुकाय, प्रत्येक वनस्पतिकाय, विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय आदि में क्रम से या उत्क्रम से उत्पन्न होता हैं । कोई मरुदेवा माता की तरह एक भव प्रत्येक वनस्पति का करके मनुष्य भव में आकर मोक्ष में चला जाता हैं । तो कोई अनन्त पुद्गल परावर्त तक ८४ लाख जीव योनि में भटकता रहता हैं, व्यवहार राशि में आने के बाद भी आध्यात्मिक उत्क्रान्ति निश्चित नहीं है, यह जीव के तथाभव्यत्व पर आधारित रहती है ।

अनेक भवों में भटकता हुआ जीव जब चरमावर्त में आता है, तब से वह विकास के अभिमुख होता है । सहजभाव से पाप प्रवृत्ति व पापवृत्ति घटने लगती है । जिससे तीन गुण प्रकट होते हैं ।

चरमावर्त के ३गुण - (१) दुःखी जीव पर अत्यन्त दया करता है । वह दूसरे के दुःख में निःस्वार्थ भाव से सहानुभूति बताता है । यदि उसके दुःख दूर करने की शक्ति न हो, तो भी उसकी भावना दया की अवश्य होती है । भूखे को रोटी, प्यासे को पानी व असहाय को सहायता करने की भावना रहती है । एवं पापों में फंसे हुए जीवों को पाप मुक्त करने की स्व पर भाव दया भी रहती है ।

(२) गुणी आत्माओं के ऊपर द्वेष नहीं होता । जैसे कोई दान देता है, तो उसे यह नहीं होता कि क्या दान देता है ? खुद ने माया कपट करके कमाया, अब अच्छा दिखाने के लिये दान देता है । खुद में दान गुण आदि न हो, यह हो सकता है, परंतु दानी आदि गुणी पर द्वेष नहीं करता ।

(३) उचित व्यवहार :- माता, पिता, रिश्तेदार, दीन, दुःखी के साथ उचित व्यवहार रखता है। मोक्ष की इच्छा भी उसे जग सकती है।

द्विर्बन्धक :- चरमावर्त में प्रवेश करने के बाद जीव कभी तीव्र मिथ्यात्व के उदय से मोहनीय कर्म की ७० कोटाकोटी सागरोपम स्थिति को बंध कर लेता है। कभी मंद मिथ्यात्व से कम स्थिति भी बांधता है। परंतु कुल दो बार से ज्यादा बार मोहनीय कर्म की ७० कोटाकोटी प्रमाण स्थिति नहीं बांधता।

सकृत् बन्धक :- उसके बाद जीव एक बार से ज्यादा मोहनीय कर्म की ७० कोटाकोटी प्रमाण स्थिति नहीं बांधता।

अपुनर्बन्धक :- चरमावर्त में प्रवेश होने के बाद पाप प्रवृत्ति व वृत्ति कम होती रहती है, अन्धकार से धीरे धीरे बाहर निकलता है और द्विर्बन्धक व सकृत् बन्धक बनता है। अेक वक्त ऐसा आता है, कि वह अपुनर्बन्धक बन जाता है। अपुनर्बन्धक यानी यह जीव अब मोहनीय कर्म की ७० कोटी कोटी सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति या मोहनीय कर्म का उत्कृष्ट रस नहीं बांधेगा। उसके तीन गुण होते हैं। (१) तीव्र भाव से पाप न करे (२) संसार के प्रति राग न हो (३) उचित स्थिति का सेवन।

(१) **तीव्रभाव से पाप न करे :** यद्यपि संसार में रहा हुआ है, इसलिये पाप प्रवृत्ति करता है, मगर तीव्र भाव से नहीं करता। जैसे रास्ते चलते वरख्त सावधानी से न चलने से पैर के नीचे मेढक दब भी जाये, मगर जान बुझ कर क्रूरता से मेढक पर पैर रख कर उसे मारे नहीं।

(२) **संसार के प्रति राग नहीं :** यद्यपि सांसारिक कार्य करता है, मगर संसार के कार्य को रस पूर्वक नहीं करता। जैसे शादी वगैरेह में जाता नहीं, फिर भी जाना पड़े, तो उसमें आनंद नहीं मानता।

(३) **उचित स्थिति सेवन :** उचित स्थिति सेवन यानी माता-पिता आदि को नमस्कार वगैरेह उचित मर्यादा का पालन करने का गुण होता है।

मार्गाभिमुख :- मार्ग यानी मोक्षमार्ग, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र

रूप है। यद्यपि इस जीव ने अभी मार्ग में प्रवेश नहीं किया है। फिर भी पापवृत्ति व पापप्रवृत्ति कम होने से मार्ग के सन्मुख हुआ है। इसलिये यह जीव मार्गाभिमुख कहलाता है।

मार्गपतित :- इसके बाद जीव मार्ग में पड़ा हुआ मार्गपतित यानी मार्ग में पहुंचा हुआ अर्थात् मोक्ष मार्ग के समीप पहुंचा हुआ मार्गपतित कहलाता है, यहां पर मोक्ष मार्ग से पतित 'गिरा हुआ' ऐसा अर्थ नहीं करना।

मार्गानुसारी :- मार्गपतित जीव अब स्वयं या किसी के उपदेश से न्याय नीति सौम्यता आदि मार्गानुसारी के ३५ गुणों का अनुसरण करता है। इससे वह सद्गति प्राप्त करता है। फिर भी कोई पाप करके दुर्गति में जाये, तो भी पुनः जल्दी उत्थान हो जाता है।

चरम पुद्गलपरावर्त अथवा मतान्तर से अर्धपुद्गलपरावर्त के प्रवेश के वरुद्ध शुक्ल पाक्षिक जीव कहलाता है। यह जीव मिथ्यात्व के अंधकार में भटकता था। उषाकाल की तरह अन्धकार कम होने से अब उजाला रूप शुभ योग में आगे बढ़ता है।

१४ गुणस्थानक

मिथ्यात्व व कषायों के क्षयोपशम, उपशम व क्षय से एवं घाति कर्मों के तारतम्य, उपशम व क्षय और अघाति कर्मों के क्षय से गुणों के प्रकट होने से या बढ़ने से गुणों का स्थान = गुणस्थानक कहलाता है। जैसे मिथ्यात्व के उपशम, क्षयोपशम व क्षय से चौथे आदि गुणस्थानक की प्राप्ति, अनन्तानुबंधि (१२ महीने से ज्यादा रहने वाले) कषाय के क्षयोपशम, उपशम व क्षय से ४ था गुणस्थानक, अप्रत्याख्यान (१२ महिने के अन्दर समाप्त होने वाले) कषाय के क्षयोपशम, उपशम व क्षय से ५वां गुणस्थानक, प्रत्याख्यान (४ महीने में समाप्त होने वाले) कषाय के क्षयोपशम से व संज्वलन (१५ दिन में समाप्त होने वाले) का अल्पतर उदय होने से ६, ७, ८, ९, १० वें गुणस्थानक की प्राप्ति होती है। संज्वलन कषाय के उपशम से ११वां और क्षय से १२ वां गुणस्थानक प्राप्त होता है, घातिकर्म के क्षय से १३वां व अन्य कुछ अघातिकर्म के

क्षय से १४वां गुणस्थानक प्राप्त होता है। सम्पूर्ण ४ अधातिकर्म का नाश होने से मोक्ष प्राप्त होता है।

- (१) **मिथ्यात्व गुणस्थानक :-** अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि होने के कारण अज्ञान से यह आत्मा संसार में भटकती रहती है। अव्यवहार-राशि व व्यवहारराशि में मार्गानुसारी तक आत्मा यद्यपि मिथ्यात्व में रहती है। परंतु मिथ्यात्व गुणस्थानक के २ भेद होते हैं। जब तक चरमावर्त में आत्मा नहीं आती है, तब तक वह अतात्विक मिथ्यात्व गुणस्थानक में रहती है और चरमावर्त में प्रवेश होने पर मार्गानुसारी तक तात्विक मिथ्यात्व गुणस्थानक में रहती है।

मिथ्यात्व के कारण आत्मा अनादि काल से सुख पर राग और दुःख पर द्वेष करती है। अचरमावर्त में रही हुआ आत्मा चारित्र धर्म का पालन भी संसार के दुःखों की निवृत्ति व सुख की प्राप्ति के लिये ही करती है, मोक्ष के लिये नहीं करती। यह अतात्विक मिथ्यात्व में रही हुई आत्मा कहलाती है। चरमावर्त में आने पर भी मिथ्यात्व का तीव्र उदय होने पर मोक्ष के लिये धर्म नहीं करती। दीक्षा भी सांसारिक सुख की प्राप्ति के लिये ले लेती है, मोक्ष के लिये नहीं लेती। इस प्रकार थोड़े सुख के बाद अमाप दुःख प्राप्त करती हैं। फिर भी यह तात्विक मिथ्यात्व गुणस्थानक में रही हुई आत्मा कहलाती है।

- (२) **सास्वादन गुणस्थानक :-** पहले गुणस्थानक पर आत्मा की पाप वृत्ति कम होने पर सत्संग, राग द्वेष की कटौति, वीतराग देव गुरु धर्म के ऊपर अहोभाव वगैरह से पुरुषार्थ करके अथवा नदी गोल पाषाण के न्याय से मिथ्यात्व को कमजोर बना कर यथाप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण यानी भाव विशेष से औपशमिक सम्यकत्व पाकर चौथे गुणस्थान आदि पर चली जाती है। वहां पर कुछ समय के बाद अनंतानुबंधी कषाय का उदय होने से चौथे गुणस्थानक से गिरकर अर्थात् सम्यकत्व गुण को वमन करके दूसरे गुणस्थानक पर आत्मा आ जाती है। कभी भी आत्मा पहले गुणस्थान से दूसरे गुणस्थानक पर नहीं आती। एवं नहीं दूसरे से तीसरे गुणस्थानक

पर जाती है। यहां मिथ्यात्व का उदय नहीं होता। ज्यादा से ज्यादा छः आवलिका व कम से कम १ समय होने पर मिथ्यात्व का उदय होने से आत्मा पहले गुणस्थानक पर जाती है। मिथ्यात्व, कषाय व उनके क्षयोपशम, उपशम व घातिकर्मों के तारतम्य से आत्मा गुणस्थानक पर ऊंचे नीचे चढ़ती उतरती है।

(३) **तीसरा मिश्र गुणस्थानक :-** इस गुणस्थानक में आने पर आत्मा सुदेव, सुगुरु, सुधर्म के ऊपर राग भी नहीं करती एवं कुदेव, कुगुरु व कुधर्म पर द्वेष भी नहीं करती। जैसे नारीयल द्वीप के मनुष्य को अन्न के ऊपर राग-द्वेष नहीं होता। इसका काल अन्तर्मुहूर्त है। आत्मा वीतराग भगवान् अवीतराग की भी पूजा वगैरह करती है।

(४) **चौथा गुणस्थानक :-** मिथ्यात्व के उपशम, क्षयोपशम व क्षय से सम्यकत्वी बनी हुई आत्मा यह गुणस्थानक प्राप्त करती है। यहां पर आत्मा को सुदेव सुगुरु के ऊपर अडिग श्रद्धा होती है। उपशम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा, आस्तिक्य ये पांच इसके लक्षण हैं। यहां पर कम से कम १ समय या अन्तर्मुहूर्त से लगाकर साधिक ६६ सागरोपम तक आत्मा रह सकती है।

(५) **पांचवां गुणस्थानक :-** सम्यकत्व पाने पर १२ व्रतों में से एक आदि व्रत का पालन करने वाली आत्मा देशविरति कहलाती है। सामायिक वगैरह भी करती है।

(६) **छठां गुणस्थानक :-** आत्मा पुरुषार्थ करके सर्वविरति यानी सब पापों से विराम पाकर यह गुणस्थानक प्राप्त करती है। यहां पर पांच महाव्रतों का पालन होता है। फिर भी प्रमाद हो जाने से अतिचार लग जाता है। यह आत्मा साधु जीवन का अतिचारपूर्वक पालन करती है। इसलिये इसका नाम प्रमत्तसंयत गुणस्थानक है।

(७) **सातवां गुणस्थानक :-** प्रमाद छोड़कर शुभ मन वचन काय योग में आत्मा गुप्त यानी तल्लीन बन कर यह गुणस्थानक प्राप्त

करती है। छठे गुणस्थानक का संकलित काल देशोनपूर्वक्रोड वर्ष है। अन्तर्मुहूर्त में झुले की तरह छठे सातवें गुणस्थानक पर आत्मा नीचे ऊपर झुलती है। दोनों गुणस्थानक का काल कम से कम १ समय और ज्यादा से ज्यादा अन्तर्मुहूर्त है। अप्रमत्त भाव से साधु जीवन का पालन करती है। इसका कुल काल अन्तर्मुहूर्त ही है।

- (८) **आठवां गुणस्थानक :-** इस गुणस्थानक का नाम अपूर्वकरण है। यहां पर आत्मा अपूर्व पुरुषार्थ करके मोहनीय कर्म का उपशम या क्षय करने के लिये तत्पर बनती है। इसमें कदापि न हुए हो, ऐसे अपूर्व स्थितिघात, अपूर्व रसघात, अपूर्व गुणश्रेणि, अपूर्व गुणसंक्रम व अपूर्व स्थितिबन्ध, ये ५ पदार्थ आत्मा करती है। इसका काल कम से कम १ समय ज्यादा से ज्यादा अन्तर्मुहूर्त होता है। इसका दूसरा नाम निवृत्तिकरण भी है। क्योंकि निवृत्ति यानी भिन्नता, करण यानी अध्यवसाय = आत्मपरिणाम = विचार, इस गुणस्थान में एक ही समय में भी अध्यवसायों में निवृत्ति = भिन्नता होती है। इसलिये इसे निवृत्तिकरण भी कहते हैं। इस गुणस्थान में एक ही समय में रही हुई आत्माओं के अध्यवसाय अलग अलग होते हैं। यहां से उपशम श्रेणी व क्षपकश्रेणी का प्रारंभ होता है।
- (९) **नौवां गुणस्थानक :-** इस गुण स्थानक का नाम अनिवृत्तिकरण, क्योंकि इस गुणस्थानक के प्रत्येक समय में प्रवेश पाने वाले सभी जीवों के अध्यवसायों की अनिवृत्ति = अभिन्नता = समानता होती है। इसका दूसरा नाम बादर सम्पराय भी है। बादर यानी स्थूल, सम्पराय यानी कषाय जहां पर होता है, वह बादर संपराय गुणस्थानक कहलाता है। आगे दसवें गुणस्थानक में सूक्ष्म कषाय होता है। इसका काल कम से कम १ समय व उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त होता है।
- (१०) **दसवां गुणस्थानक :-** इसका नाम सूक्ष्म संपराय है। यहां पर लोभ मोहनीय कर्म का अत्यन्त सूक्ष्म रस उदय में होता है, जिसे

किट्टी कहा जाता है। यहां पर कोई आत्मा मोहनीय कर्म का सर्वथा उपशम करती है, जैसे कोई आदमी मिट्टी पर पानी डालकर धोके से कूट कूट कर मिट्टी को उपशान्त बना (दबा) लेता है अथवा जैसे अग्नि के ऊपर राख डाल कर उसके प्रभाव को उपशान्त = दबा देता है। इसके कारण वह ११ वें गुणस्थानक पर जाती है। इसका काल कम से कम समय और ज्यादा से ज्यादा अन्तर्मुहूर्त होता है। जो आत्मा मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय कर लेती है, वह १२ वें गुणस्थानक पर जाती है।

(११) **ग्यारहवां गुणस्थानक :-** इस गुणस्थानक का दूसरा नाम उपशांत मोह वीतराग है। यहां पर आत्मा मोहनीय कर्म के उपशान्त बनने का कारण वीतरागभाव के स्वरूप का अनुभव करती है। इसका काल कम से कम १ समय व ज्यादा से ज्यादा अन्तर्मुहूर्त होता है। उसके बाद आत्मा अवश्य मोहनीय कर्म का उदय होने से १०, ९, ८ वें गुणस्थान पर क्रमशः जाती है। यदि यहां पर मृत्यु हो जाती है, तो वह सीधे चौथे गुणस्थानक पर पहुंचती है। चित्र में अेक मुनि क्रमशः उतरते व दूसरे मरकर ४ थे गुणस्थानक पर जा रहे हैं। जैसे अग्नि पर से राख दूर होने पर अग्नि प्रकट होती है, इसी प्रकार संज्वलन कषाय या अप्रत्याख्यान कषाय प्रकट होते हैं।

(१२) **बारहवां गुणस्थानक :-** इस गुणस्थानक का नाम क्षीणमोह वीतराग है। यहां पर लेशमात्र भी मोहनीय कर्म नहीं होता है। पहले सर्वथा उसका क्षय हो चूका है। इसलिये यहां से आत्मा नीचे नहीं गिरती। यहां पर अंतिम समय में दर्शनावरण, ज्ञानावरण व अन्तराय कर्म का क्षय हो जाता है।

यहाँ पर सूर्य के उदय के पहले अरुणोदय के समान प्रातिभ ज्ञान होता है। इसलिये इससे आगे आत्मा केवलज्ञानी बनती है। इसका काल कम से कम अन्तर्मुहूर्त व ज्यादा से ज्यादा भी अन्तर्मुहूर्त है।

(१३) **तेरहवां गुणस्थानक :-** इस गुणस्थानक का नाम संयोगी केवली है। यहां पर तीन योग होते हैं। इसलिये संयोगी केवली कहलाता

है। यद्यपि देशना में वचन योग व विहार में काययोग होता है। परंतु मन का उपयोग नहीं होने पर भी उसकी शक्ति अवश्य होती है। अनुत्तर देवो के संशय को दूर करके मनोवर्गणा के द्रव्य मन का प्रयोग भी होता है। अंतिम अन्तर्मुहूर्त में इन तीनों योगों का निरोध कर अयोगी बनते हैं। इसका कम से कम काल अन्तर्मुहूर्त और ज्यादा से ज्यादा देशोनपूर्वकरोड वर्ष है। इस गुणस्थानक को प्राप्त करते ही तीर्थकर के लिये देव समवसरण रचते हैं, अष्ट महा प्रातिहार्य व कम से कम करोड देव सेवा के लिये उपस्थित रहते हैं। तीर्थकर भगवान् भव्यों को प्रतिबोध देकर तीर्थ की स्थापना करते हैं। देवों की भक्ति के कारण सोने के कमल पर पैर रखकर वे विचरते हैं। दूसरे सामान्य केवली अपने आयुष्य तक पृथ्वीतल पर प्रतिबोध करते हुए विचरते हैं।

(१४) **चौदहवां गुणस्थानक :-** इस गुणस्थानक का नाम अयोगी केवली है। यहां पर ओक भी योग नहीं होता है। आत्मा मेरु पर्वत की तरह स्थिर हो जाती हैं, अंश मात्र भी चंचलता नहीं होती। इसका काल अ-इ-उ-ऋ-लृ इन पांच ह्रस्व स्वर बोलने के समय जितना है। उसके बाद अस्पृशद् गति से आत्मा मोक्ष में जाती है। वहां सादि अनन्तकाल तक रहती है। अन्तिम शरीर के २/३ भाग में आत्मा रहती है।

गुणस्थानको का चढ़ाव उतराव :- पहले से तीसरे, चौथे, पांचवे, छठे व सातवें गुणस्थानक पर आत्मा जा सकती है। दूसरे से पहले जा सकती है। एवं तीसरे से पहले आ सकती है। व चौथे से पहले, दूसरे, तीसरे, पांचवे, छठे व सातवें गुणस्थानक पर आत्मा जा सकती है।

पांचवे से पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे, छठे सातवें, गुणस्थानक पर आत्मा जा सकती है।

छठे से पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे, सातवें गुणस्थानक पर आत्मा जा सकती है।

सातवें से पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे, पांचवे, छठे, आठवें

गुणस्थानक पर आत्मा जा सकती है ।
आठवें से चौथे , सातवें व नौवें गुणस्थानक पर आत्मा जा सकती है ।
नौवें से चौथे , आठवें व दसवें गुणस्थानक पर आत्मा जा सकती है ।
दसवें से चौथे व नौवें ग्यारहवें व बारहवें गुणस्थानक पर आत्मा जा सकती है ।
ग्यारहवें से १० वें व ४थें जा सकती है ।
बारहवें से तेरहवें गुणस्थानक पर आत्मा जाती है ।
तेरहवें से चौदहवें गुणस्थानक पर आत्मा जाती है । फिर चौदहवें से आत्मा मोक्ष में जाती है ।



११ काल

चार द्रव्यों का वर्णन करके अब पांचवें काल द्रव्य का वर्णन करते हैं। काल दो प्रकार का होता है। (१) निश्चय व (२) व्यवहारकाल निश्चयकाल वस्तु के वर्तनादि पर्यायरूप है। व्यवहारकाल समय आवलिका वगैरह रूप है, कल्पना से समयों को इकट्ठा करके आवलिका आदि का हम व्यवहार करते हैं। नया पुराना कहने का व्यवहार काल से होता है। सब से छोटा काल का अविभाज्य अंश १ समय है। असंख्यात समय \times १ आवलिका = १५६ आवलिका = १००५६ मिनट। क्षुल्लक भव = १ श्वासोच्छ्वास, ७ श्वासोच्छ्वास = १ स्तोक, ७ स्तोक = १ लव, १८, लव = १ घडी, २ घडी = १ मुहूर्त अथवा मुहूर्त = ४८ मिनट = ६५५३६ क्षुल्लक भव। ९ समय से १ समय न्यून मुहूर्त = अन्तर्मुहूर्त। ३० मुहूर्त = १ दिन, १५ दिन = पक्ष, २ पक्ष = १ मास, २ मास = १ ऋतु, ३ ऋतु = अयन, २ अयन = १ वर्ष, ८४ लाख वर्ष = १ पूर्वांग, ८४ लाख पूर्वांग = पूर्व यानी ७०५६ अरब वर्ष, असंख्यात वर्ष = १ पत्योपम।

पत्योपम

प्रश्न :- पत्योपम को स्पष्ट समझाईये

उत्तर :- १ योजन (४ गाऊ) लम्बा चौड़ा व गहरा खड्डा खोद कर उसमें ७ दिन के युगलिक मनुष्य के एक एक बाल के असंख्यात टुकड़े कर टुंस टुंस कर इस प्रकार भर दिये जाये कि चक्रवर्ती के ९६ करोड सैनिक उस पर चले, तो १/४ सेन्टीमीटर भी जगह न हो। उसमें से १-१ बाल १०० वर्ष पूरे होने पर निकालते हुए खड्डा खाली होने पर काल १ पत्योपम होता है।

१० करोड \times १ करोड पत्योपम = १० कोटा कोटी पत्योपम = १ सागरोपम।

कालचक्र

जैसे चक्र के आरे यानी विभाग होते हैं, वैसे ही कालचक्र के १२ आरे यानी विभाग होते हैं। कालचक्र के दो मुख्य विभाग होते हैं।

(१) अवसर्पिणी (२) उत्सर्पिणी। अवसर्पिणी में ६ और उत्सर्पिणी में भी ६ आरे होते हैं। अवसर्पिणी में क्रमशः शुभ की हानि और अशुभ की वृद्धि होती है। उत्सर्पिणी में क्रमशः अशुभ की हानि व शुभ की वृद्धि होती है।

अवसर्पिणी के १० कोटा कोटी सागरोपम + उत्सर्पिणी के १० कोटाकोटी सागरोपम = २० कोटाकोटी सागरोपम = १ कालचक्र

कालचक्र का विशेष वर्णन इस प्रकार है।

(१) **पहला आरा** - इसका दूसरा नाम सुषम सुषम (सुख ही सुख) आरा है। इसका प्रमाण चार कोटा - कोटी सागरोपम है।

इस आरे के प्रारम्भ में तीन गाऊ का शरीर व तीन पत्योपम का आयुष्य होता है।

इस आरे में मनुष्य के शरीर में २५६ पसलियाँ होती है। पहला संघयण व पहला संस्थान होता है। १० प्रकार के कल्पवृक्ष होते हैं। वे युगलिकों की ईच्छा पूर्ण करते हैं। तीन - तीन दिन व्यतीत होने पर एक तुवर जितना भोजन करते हैं। ६ महीने का आयुष्य शेष रहने पर स्त्री एक युगल = पुत्र-पुत्री को जन्म देती है। ४९ दिन तक पालन पोषण करती है। बाद में वह युगल स्वावलम्बी बन जाता है। वे सभी मर कर देव ही बनते हैं।

(२) **दूसरा आरा** :- इसका दूसरा नाम सुषम (सिर्फ सुख) आता है इसका प्रमाण तीन कोटा कोटी सागरोपम है। इसके प्रारम्भ में दो गाऊ का शरीर व २ पत्योपम का आयुष्य होता है। १२८ पसलियाँ होती है। २-२ दिन के बाद एक बैर जितना भोजन करते हैं। ६ महीने शेष रहने पर स्त्री एक युगल को जन्म देती

है। ६४ दिन तक उनका पालन करती है। बाद में वे स्वावलम्बी हो जाते हैं, मर कर देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

(३) तीसरा आरा :- इसका दूसरा नाम सुषम दुषम (सुख बहुत व दुःख कम) है। इसका प्रमाण २ कोटा-कोटी सागरोपम है। इनके ६४ पसलियाँ होती हैं। इनका एक गाऊ का शरीर होता है। प्रारंभ में १ पत्योपम का आयुष्य होता है। एक-एक दिन के बाद आंवला जितना भोजन करते हैं। ६ महीने शेष रहने पर स्त्री एक युगल को जन्म देती है। ७९ दिन तक पालन करती है। बाद में वह स्वावलम्बी हो जाता है व मरकर देव बनता है। इसके अंत में जब ८४ लाख पूर्व (पूर्व = ८४ लाख वर्ष X ८४ लाख वर्ष) और ३ वर्ष ८ १/२ महीने बाकी रहते हैं, तब प्रथम तीर्थकर का जन्म होता है। ८३ लाख पूर्व जाने पर १ लाख पूर्व और ३ वर्ष ८ १/२ महीने बाकी रहने पर भगवान दीक्षा लेते हैं। उसके बाद १ चक्रवर्ती बनता है और ३ वर्ष ८ १/२ महीने शेष रहने पर भगवान मोक्ष में जाते हैं।

(४) चौथा आरा :- इसका दूसरा नाम दुषम सुषम (दुःख ज्यादा व सुख कम) आरा है। इसका प्रमाण ४२००० वर्ष न्यून १ कोटा-कोटी सागरोपम है। प्रारम्भ में ३२ पसलियाँ, ५०० धनुष का शरीर, पूर्व करोड वर्ष का आयुष्य होता है। इसमें २३ तीर्थकर, ११ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव होते हैं। इसके ३ वर्ष ८ १/२, महीने बाकी रहने पर चौबीसवें तीर्थकर मोक्ष में जाते हैं।

(५) पांचवा आरा :- इसका दूसरा नाम दुःषम (सिर्फ दुःख) आरा है। इसका प्रमाण २१००० वर्ष का है। प्रारम्भ में १६ पसलियाँ, ७ हाथ का शरीर व १३० वर्ष का आयुष्य होता है। इसमें जन्मी हुई आत्मा उसी भव में मोक्ष में नहीं जाती। मर कर चार गति में से किसी भी गति में जाती है।

(६) **छद्वा आरा :-** इसका दूसरा नाम दुषम दुषम (दुःख ही दुःख) आता है। इसका प्रमाण २१००० वर्ष है। प्रारंभ में २० वर्ष का आयुष्य व २ हाथ का शरीर होता है और अन्त में १६ वर्ष का आयुष्य व एक हाथ का शरीर होता है। इस आरे के अन्दर दिन में भीषण गर्मी पड़ती है। नदी के किनारे पर बिल बने हुए होते हैं, लोग ताप से बचने के लिये दिन को उसमें चले जाते हैं, रात्रि को बाहर निकलते हैं और नदी की वालुका (बजरी) में पकाने हेतु जो मछलियां पहली रात्रि में रखी हो, वे निकाल कर खाते हैं और नयी मछलियां वालुका में ढक कर रख देते हैं, जिससे सूर्य की तीव्र गर्मी से दिन में पक जाये। इस प्रकार जीवन जी कर मर करके ज्यादातः नरक में जाते हैं। इससे विपरीत क्रम से उत्सर्पिणी के ६ आरे होते हैं। १ उत्सर्पिणी = १० कोटा कोटी सागरोपम = छद्वा आरा ४ कोटा कोटी सागरोपम + पांचवा आरा ३ कोटाकोटी सागरोपम + चोथा आरा २ कोटा कोटी सागरोपम + तीसरा आरा १ कोटाकोटी सागरोपम में कम ४२००० वर्ष, + दूसरा आरा २१००० वर्ष + पहला आरा २१००० वर्ष होते हैं।



१२ पुद्गल परावर्तन

अनन्त कालचक्र = १ पुद्गल परावर्त होता है। पुद्गल परावर्त के द्रव्यादि ४ प्रकार होते हैं। प्रत्येक के दो-दो भेद होते हैं, सूक्ष्म व बादर। कुल ८ भेद होते हैं।

- (१) **बादर द्रव्य पुद्गल परावर्त** :- पुद्गलों की औदारिक आदि आठ वर्गणाएँ जीव के उपयोग में आती हैं। उनमें से आहारक वर्गणा को छोड़कर औदारिक आदि ७ वर्गणा के रूप में समस्त पुद्गलों को तिर्यच आदि भवों में एक जीव ग्रहण करके छोड़ने में जितना काल व्यतीत करता है, उसे बादर द्रव्य पुद्गल परावर्त कहते हैं।
- (२) **सूक्ष्म द्रव्य पुद्गल परावर्त** :- उन औदारिक आदि ७ वर्गणा (८-१ आहारक वर्गणा) में से एक वर्गणा के रूप में (जैसे कि औदारिक वर्गणा या वैक्रिय वर्गणा या तेजस वर्गणा या भाषा वर्गणा या श्वासोच्छ्वास वर्गणा या मनोवर्गणा या कर्मण वर्गणा के रूप में) एक जीव समस्त पुद्गलों को ग्रहण करके छोड़ने में जितना समय व्यतीत करता है, उसे सूक्ष्म द्रव्य पुद्गल परावर्त कहते हैं।
- (३) **बादर क्षेत्र पुद्गल परावर्त** :- १४ रज्जू प्रमाण लोक के आकाश प्रदेश असंख्यात होते हैं। उन सभी आकाश प्रदेशों को एक जीव मृत्यु द्वारा स्पर्श करे अर्थात् पहली बार मृत्यु के समय अमुक आकाश प्रदेशों को स्पर्श करके मरा। बाद में दूसरी बार अमुक प्रदेशों को स्पर्श करके जीव मरा। बाद में तीसरी बार अमुक आकाश प्रदेशों को स्पर्श करके मरा। यदि पहले जिन आकाश प्रदेशों को स्पर्श करके मरा है उन्हीं आकाश प्रदेशों को ही स्पर्श करके वापस मरेगा, तो वह क्षेत्र दूसरी बार गिनती में नहीं गिना जायेगा। जब नये आकाश प्रदेशों को ही स्पर्श करके मरेगा, तब वह गिनती में गिना जायेगा। इस प्रकार मृत्यु द्वारा विश्व के सभी आकाश प्रदेशों को मृत्यु द्वारा स्पर्श करने में एक जीव को जितना समय बीतता है, वह बादर क्षेत्र पुद्गल परावर्त कहलाता है।

पुद्गल परावर्त किसे कहते हैं

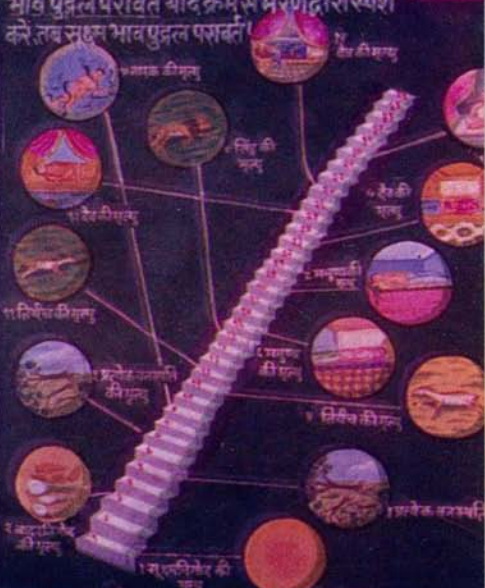
एक जीव विरम के सभी पुद्गल के परमाणुओं को आकार के वर्णानुसार सिद्धांत भाते वर्णानुसार जोड़ा जावे तब छोड़े तब बादर द्वय पुद्गल परावर्त यदि किसी एक भाते समुद्रण करके छोड़े तब सूक्ष्म पुद्गल परावर्त।

११ राजलोक के हरेक आकाशपदेश को व्युत्क्रम से द्वारा स्पर्श करे तब बादर क्षेत्र पुद्गल परावर्त। यदि प्रमरण द्वारा स्पर्श करे तो सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्त।



एक काल चक्र के समीप सभी को व्युत्क्रम से मरण द्वारा स्पर्श करे तब बादर काल पुद्गल परावर्त यदि क्रम से मरण द्वारा स्पर्श करे तब सूक्ष्म काल पुद्गल परावर्त।

एक जीव रसबन्ध के सर्व अन्धवस्त्रों को मरण के द्वारा व्युत्क्रम से स्पर्श करे तब बादर भाव पुद्गल परावर्त यदि क्रम से मरण द्वारा स्पर्श करे तब सूक्ष्म भाव पुद्गल परावर्त।



सुनी श्री गणेश्वर विजयजी मसा की प्रेरणा से टीपु कई जवान मल जी तखतगढ़ द्वारा निर्मित

(४) **सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्त** :- लोक के सभी आकाश प्रदेशों को क्रमशः मृत्यु द्वारा स्पर्श करने पर सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्त होता है। अर्थात् बादर क्षेत्र पुद्गल परावर्त में यह बताया गया है कि अनन्तर व परम्परा से नये-नये आकाश प्रदेशों को मृत्यु द्वारा स्पर्श करता है। जब कि सूक्ष्म पुद्गल परावर्त में अनन्तर नये-नये आकाश प्रदेशों को मृत्यु द्वारा स्पर्श करता है। अर्थात् जिन आकाश प्रदेशों को स्पर्श करके मृत्यु को प्राप्त हुआ, उसके बिल्कुल पास में ही रहने वाले आकाश प्रदेशों को स्पर्श करके मरेगा, तब ही वह गिनती में गिना जायेगा। दूर पर रहे हुए आकाश प्रदेशों को स्पर्श करके मरेगा, तो वे गिनती में नहीं गिने जायेगे। इस प्रकार मृत्यु द्वारा क्रमशः अनन्तर अनन्तर आकाश प्रदेशों को स्पर्श करता हुआ जीव सारे विश्व के आकाश प्रदेशों को स्पर्श जितने काल में कर लेता है, उसको सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्त कहते हैं।

५. **बादर काल पुद्गल परावर्त** :- एक उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी में असंख्यात समय होते हैं। उन समयों को अनन्तर व परम्परा से मृत्यु द्वारा स्पर्श करने में जितना काल बीतता है, उसे बादर काल पुद्गल परावर्त कहते हैं। अर्थात् पहले अवसर्पिणी या उत्सर्पिणी के जिस समय को स्पर्श करके मरा हो, दूसरी बार यदि उसी समय को स्पर्श करके मरेगा, तो वह समय दूसरी बार गिनती में नहीं गिना जायेगा। यदि दूसरे समय को स्पर्श करके मरेगा, तो वह गिनती में गिना जायेगा। इस प्रकार उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी के सभी समयों को अनन्तर व परम्परा से मृत्यु द्वारा स्पर्श होने पर बादर काल पुद्गल परावर्त होता है।

६. **सूक्ष्म काल पुद्गल परावर्त** :- उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी के समयों को मृत्यु द्वारा क्रमशः स्पर्श करता है, तब सूक्ष्म काल पुद्गल परावर्त होता है। बादर काल पुद्गल परावर्त में तो बताया गया है कि उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी के सभी समयों को मृत्यु द्वारा अनन्तर व परम्परा से स्पर्श करता है। सूक्ष्म और बाहर काल पुद्गल परावर्त में विशेष यह है कि जीव अवसर्पिणी के पांचवे आरे

में अमुक समय को स्पर्श करके मरा, बाद में पांचवे आरे के उससे भिन्न अमुक समय को स्पर्श करके मरा, उसके बाद छठे आरे के अमुक समय को स्पर्श करके मरा, इस प्रकार अनन्तर व परम्परा से उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी के सभी समयों को मृत्यु द्वारा स्पर्श करके मरने में जो काल व्यतीत होता है, उसको बादर काल पुद्गल परावर्त कहते हैं। जब कि उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी के सभी समयों को मृत्यु द्वारा क्रमशः स्पर्श करता है, जैसे कि अवसर्पिणी के या सभी पांचवा आरे के अमुक समयों को मृत्यु द्वारा स्पर्श किया, उसके बाद अवसर्पिणी के पांचवे आरे के अनन्तर दूसरे समय को मृत्यु द्वारा स्पर्श करेगा, तब वह गिनती में गिना जायेगा। उसी प्रकार क्रमशः अनन्तर - अनन्तर समय को स्पर्श करता हुआ अवसर्पिणी (या उत्सर्पिणी) के सभी समयों को मृत्यु द्वारा स्पर्श करता है। तब सूक्ष्म काल पुद्गल परावर्त होता है।

(७) **बादर भाव पुद्गल परावर्त :-** रसबंध के अध्यवसाय (विचार) असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण है, उनमें से एक-एक अध्यवसाय को मृत्यु द्वारा अनन्तर और परम्परा से स्पर्श करते हुए सभी अध्यवसायों को स्पर्श करने में जितना समय जावे, उसे बादर भाव पुद्गल परावर्त कहते हैं।

(८) **सूक्ष्म भाव पुद्गल परावर्त :-** रस बंध के एक-एक अध्यवसाय को मृत्यु द्वारा अनन्तर क्रमशः स्पर्श करता हुआ सभी अध्यवसायों को स्पर्श जितने काल में करें, वह सूक्ष्म भाव पुद्गल परावर्त कहलाता है। बादर भाव पुद्गल परावर्त और सूक्ष्मभाव पुद्गल परावर्त किसी भी जीव को पूर्ण होते ही नहीं, क्योंकि क्षपक श्रेणि के अन्दर जो रसबन्ध के अध्यवसाय होते हैं, उन सभी को मृत्यु द्वारा कोई भी जीव स्पर्श नहीं करता है। एवं एक स्थिति स्थान में असंख्यात अध्यवसाय होते हैं, उनमें से क्षपक श्रेणि पर चढ़ने वाले जीव सभी अध्यवसायों को स्पर्श नहीं करते, क्योंकि वह जीव वापस नीचे नहीं उतरता। इसलिये भाव पुद्गल परावर्त पूर्ण नहीं होता है।

ग्रंथभेद - प्रक्रिया

अध्यात्मिक शिक्षण
 १. उपमात्मक में प्रथम की प्रति
 २. उपमात्मक में द्वितीय की प्रति
 ३. उपमात्मक में तृतीय की प्रति
 ४. उपमात्मक में चतुर्थ की प्रति
 ५. उपमात्मक में पंचम की प्रति
 ६. उपमात्मक में षष्ठ की प्रति
 ७. उपमात्मक में सप्तम की प्रति
 ८. उपमात्मक में अष्टम की प्रति
 ९. उपमात्मक में नवम की प्रति
 १०. उपमात्मक में दशम की प्रति

उपरमात्मिक की प्रति (अपुनी अध्यात्मिक अस्मद्वय)
 १. उपमात्मक में प्रथम की प्रति
 २. उपमात्मक में द्वितीय की प्रति
 ३. उपमात्मक में तृतीय की प्रति
 ४. उपमात्मक में चतुर्थ की प्रति
 ५. उपमात्मक में पंचम की प्रति
 ६. उपमात्मक में षष्ठ की प्रति
 ७. उपमात्मक में सप्तम की प्रति
 ८. उपमात्मक में अष्टम की प्रति
 ९. उपमात्मक में नवम की प्रति
 १०. उपमात्मक में दशम की प्रति

चरम कक्षा तथा भव परिणति
 संसार के सुख प्रति तीव्र राग
 संसार के दुख प्रति द्वेष
 चरमावर्त है

परिपाक, दोष टले वली दृष्टि खुले भली प्राप्ति पर्यवसक

संसार के सुख प्रति तीव्र राग

१. संसार के सुख प्रति तीव्र राग है।
२. इससे संसार के दुख प्रति तीव्र द्वेष उत्पन्न होता है।
३. इससे संसार के सुख प्रति तीव्र राग उत्पन्न होता है।
४. इससे संसार के सुख प्रति तीव्र राग उत्पन्न होता है।
५. इससे संसार के सुख प्रति तीव्र राग उत्पन्न होता है।
६. इससे संसार के सुख प्रति तीव्र राग उत्पन्न होता है।
७. इससे संसार के सुख प्रति तीव्र राग उत्पन्न होता है।
८. इससे संसार के सुख प्रति तीव्र राग उत्पन्न होता है।
९. इससे संसार के सुख प्रति तीव्र राग उत्पन्न होता है।
१०. इससे संसार के सुख प्रति तीव्र राग उत्पन्न होता है।

संसार के दुख प्रति तीव्र द्वेष

१. संसार के दुख प्रति तीव्र द्वेष है।
२. इससे संसार के सुख प्रति तीव्र राग उत्पन्न होता है।
३. इससे संसार के सुख प्रति तीव्र राग उत्पन्न होता है।
४. इससे संसार के सुख प्रति तीव्र राग उत्पन्न होता है।
५. इससे संसार के सुख प्रति तीव्र राग उत्पन्न होता है।
६. इससे संसार के सुख प्रति तीव्र राग उत्पन्न होता है।
७. इससे संसार के सुख प्रति तीव्र राग उत्पन्न होता है।
८. इससे संसार के सुख प्रति तीव्र राग उत्पन्न होता है।
९. इससे संसार के सुख प्रति तीव्र राग उत्पन्न होता है।
१०. इससे संसार के सुख प्रति तीव्र राग उत्पन्न होता है।

१३ सम्यग्दर्शन पाने के लिये ग्रन्थिभेद प्रक्रिया

केवलज्ञानियों ने दृश्यादृश्य सभी पदार्थों का वर्णन किया है। उन पर जब तक पूर्णतः श्रद्धा नहीं होती, तब तक उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता है। सम्यग्दर्शन यानी केवलज्ञानियों ने विश्व के पदार्थों को जैसा बताया था, उसके मुताबिक पदार्थों का दर्शन यानी अदभुत विश्वास होना, वह सम्यग्दर्शन कहलाता है। इस सम्यग्दर्शन को समकित भी कहते हैं। सम्यग्दर्शन यह केवलज्ञानियों द्वारा प्ररूपित पदार्थों पर अदभुत श्रद्धा वाला आत्मपरिणाम है। इस आत्मपरिणाम को मिथ्यात्व मोहनीय कर्म रोकता है। मार्गानुसारी तक मन्द मिथ्यात्व से आत्मविकास होता है। मिथ्यात्वमोहनीय कर्म के उपशम आदि से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। उसके बाद सम्यग्दर्शन से आत्म विकास बढ़ता रहता है। इसलिये सम्यग्दर्शन की प्राप्ति अब हम आपको समझा रहे हैं। आप जानते हैं कि भिन्न भिन्न कर्मों की उत्कृष्टस्थिति ७०, ३०, २० कोटा-कोटी सागरोपम वगैरह शास्त्रों में बताई गई है।

सम्यग्दर्शन प्राप्ति की प्रक्रिया

इस संसार के अन्दर भटकता हुआ जीव कई प्रकार के कष्ट आदि अनिच्छा से भी सहन करके एक कोटाकोटी सागरोपम के अन्दर सातों कर्मों की स्थिति करता है, तब वह मिथ्यात्व की ग्रन्थि (गांठ) का भेदन करने के लिये उद्यत होता है। यह तीव्र राग द्वेष की गांठ है और यह दुर्भेद्य है। इस गांठ का जब तक भेदन नहीं होता, तब तक हम सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं कर सकते।

अभव्य वगैरह इस ग्रन्थि के देश तक आ सकते हैं। ग्रन्थिदेश तक आने वाले सभी जीवों की कर्म की स्थिति अन्तःकोटाकोटी सागरोपम यानी एक कोटाकोटी सागरोपम के अन्दर हो जाती है। जब तक कर्म की इतनी स्थिति नहीं होती, तब तक द्रव्य से भी जीव 'नमो अरिहंताणं' नहीं बोल सकता। इस नियम से अब हम कह सकते हैं कि आप व हम

नमस्कार महामन्त्र रोज बोलते हैं। इसलिये हमारी भी कर्मस्थिति अन्तः कोटाकोटी सागरोपम तो हो गई है। उसके बाद किसी को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति निसर्ग से यानी गुरु आदि के उपदेश के बिना ही हो जाती है, वह निसर्ग सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कही जाती है। अन्य किसी व्यक्ति को गुरु आदि के उपदेश से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है, वह अधिगम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कही जाती है।

दोनों ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति तीन करण यानी आत्मा के विशिष्ट अध्यवसाय से होती है। वे क्रमशः तीन करण निम्नलिखित होते हैं (१) यथाप्रवृत्तकरण (२) अपूर्वकरण व (३) अनिवृत्तिकरण।

१. यथाप्रवृत्तकरण :- जैसे नदी के अन्दर पत्थर टकराता टकराता गोल बन जाता है। इसी तरह कर्म की स्थिति कम करने की इच्छा न होते हुए भी कष्ट सहन करते करते या इच्छा से कष्ट सहन करते करते जब कर्म स्थिति अन्तःकोटाकोटी सागरोपम हो जाती है, तब से यथाप्रवृत्तकरण होता है। यहाँ तक आकर वापस जीव नीचे भी चला जाता है और पुनः कर्म की स्थिति बढ़ा लेता है। अभव्य जीव भी ग्रन्थिदेश तक आ जाता है। किन्तु राग द्वेष की भयंकर गांठ पाकर वापस लौट जाता है। जैसे कोई दुबला व्यक्ति डाकू को देखकर वापिस भग जाता है। उपमा द्वारा राग द्वेष की भयंकर गांठ पाकर वापस नीचे जाता हुआ आदमी चित्र में बताया गया है।

कर्म की स्थिति अन्तः कोटाकोटी सागरोपम होने के बाद किसी भव्य जीव का वीर्योल्लास इतना तेज हो जाता है कि वह आगे बढ़ने का प्रबल पुरुषार्थ करता है, तब जीव का वह चरम यानी अन्तिम यथाप्रवृत्तकरण कहलाता है। इसका काल अन्तर्मुहूर्त होता है। इसमें प्रति समय असंख्यात लोकाकाश जितने अध्यवसाय होते हैं और उनका इस करण के संख्यातर्वे भाग तक अनुकर्षण होता रहता है। इस अन्तर्मुहूर्त काल में अनेक नये नये स्थितिबंध पत्योपम के संख्यातर्वे भाग से न्यून न्यूनतर करता रहता है। यथाप्रवृत्तकरण का अन्तर्मुहूर्त पूर्ण होते ही अपूर्वकरण करता है।

अपूर्वकरण यानी जिसमें ग्रन्थिभेद होता है। इसमें जीव के अपूर्व यानी जो कभी पहले प्राप्त नहीं हुए, ऐसे करण यानी अध्यवसाय होते हैं। इसलिये प्रतिसमय प्रति व्यक्ति के नये-नये ही अध्यवसाय होते हैं, यथाप्रवृत्तकरण की तरह अध्यवसाय का अनुकर्षण नहीं होता। इसलिए इसे अपूर्वकरण कहते हैं। अपूर्वकरण यह कुल्हाड़ी जैसा है, जैसे कुल्हाड़ी से लकड़े की गांठ का छेदन भेदन होता है। वैसे ही इस करण रूपी कुल्हाड़ी से मिथ्यात्व की गांठ (= तीव्र रागद्वेष) का छेदन होता है। चित्र में उपमा द्वारा लकड़े को काटता हुआ मनुष्य बताया गया है। इस अपूर्वकरण में पांच वस्तुएँ होती हैं। (१) अपूर्व स्थितिघात (२) अपूर्व रसघात (३) अपूर्वस्थितिबंध (४) अपूर्वगुणश्रेणी (५) अपूर्वगुणसंक्राम।

(१) **अपूर्वस्थितिघात** :- यथाप्रवृत्तकरण में कर्मों की स्थिति अन्तःकोटाकोटी सागरोपम थी। उसमें से स्थिति के ऊपर के भाग में से प्रति समय अपवर्तनाकरण से प्रदेशों को हटा कर जीव नीचे की कम स्थिति वाले कर्म स्कंधों के साथ मिलाता है। इस तरह अन्तर्मुहूर्त होने पर उत्कृष्ट से संख्यात सागरोपम कम से कम पत्योपम के संख्यातवां भाग जितनी स्थिति कम हो जाती है, इसे स्थितिघात कहते हैं। चित्र में बायी ओर देखिये पहले आइसकेन्डी की तरह दो स्थितिसत्ता बताई है। दूसरी पत्योपम का संख्यातवां भाग कम बताई है। उसके बाद पहले बड़ी स्थिति बताई है। उसके पास में स्थितिघात बताकर छोटी स्थिति बताई है। इस प्रकार अपूर्वकरण में संख्यात स्थितिघात होते हैं। यद्यपि अपूर्वकरण भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है, मगर एक स्थितिघात का अन्तर्मुहूर्त अपूर्वकरण के अन्तर्मुहूर्त से संख्यातवां भाग का होता है। जीव ने कभी ऐसे स्थितिघात किये नहीं हैं, इसलिये ये अपूर्वस्थितिघात कहलाते हैं। इन स्थितिघातों के कारण अपूर्वकरण के प्रथम समय से चरम समय में स्थिति संख्यातवां भाग मात्र रह जाती है।

(२) **अपूर्वरसघात** :- अशुभ कर्म का जो तीव्र रस सत्ता में होता है, उसका एक-एक अन्तर्मुहूर्त में घात करके मन्द मन्द करता है,

एक एक अन्तर्मुहूर्त में अनन्तवां भाग रस रहता है, उसे अपूर्व रसघात कहते हैं। इस प्रकार एक स्थितिघात के काल में हजारों रसघात हो जाते हैं। रसघात होने से कर्म की तीव्र फल देने की क्षमता कम हो जाती है।

- (३) **अपूर्वस्थितिबंध :-** प्रति अन्तर्मुहूर्त पत्योपम के संख्यातवें भाग से न्यून न्यूनतर स्थितिबन्ध होता रहता है। क्योंकि कर्म का स्थितिबंध संक्लेश द्वारा ज्यादा ज्यादा होता रहता है और विशुद्धि से न्यून न्यूनतर होता रहता है। अपूर्वकरण में विशुद्धि होने से नये नये स्थितिबन्ध अन्तःकोटाकोटी सागरोपम प्रमाण होते हुए भी पूर्व पूर्व से पत्योपम के संख्यातवें भाग से न्यून न्यूनतर होते हैं। अपूर्वकरण में ऐसे संख्यात स्थितिबन्ध होते हैं।
- (४) **अपूर्वगुणश्रेणी :-** अपूर्व स्थितिघात करते हुए जिन कर्म प्रदेशों को हटाकर नीचे रखता है, उसमें उदय समय में जितने कर्म स्कन्धों की रचना करता है, उनसे दूसरे समय में असंख्यात गुण, तीसरे समय में असंख्यात गुण, इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त के काल गुण यानी असंख्यात गुण क्रम से श्रेणि यानी रचना करना, उसे गुणश्रेणी कहते हैं। यह अपूर्व होने से अपूर्व गुणश्रेणी कहलाती है। असत्कल्पना से उदय समय में १०० कर्म प्रदेशों की रचना की, तो दूसरे समय में १० गुणे यानी $१०० \times १० = १०००$ कर्म प्रदेशों की रचना की। असत्कल्पना से असंख्यात = १०।
- (५) **अपूर्वगुणसंक्रम :-** गुण यानी असंख्यातगुण के क्रम से संक्रम यानी पहले अबध्यमान अर्थात् पूर्व बद्ध अशुभ कर्मप्रदेशों का बध्यमान शुभ कर्मों में परिवर्तन करना। उन्हें शुभ कर्म प्रदेश के रूप में बना लेना। यहां यद्यपि मुख्यतः मिथ्यात्वमोहनीय कर्म का अधिकार है। किन्तु उसका गुणसंक्रम नहीं होता, क्योंकि वह बध्यमान है। अनिवृत्तिकरण के चरम समय तक मिथ्यात्वमोहनीय कर्म का बंध चालू रहता है। आयुष्य के सिवाय शेष कर्मों का गुणसंक्रम चालू होता है। ये पांच अपूर्वपदार्थ अपूर्वकरण में होते हैं।

इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त में अपूर्वकरण रूपी कुल्हाड़े से मिथ्यात्व

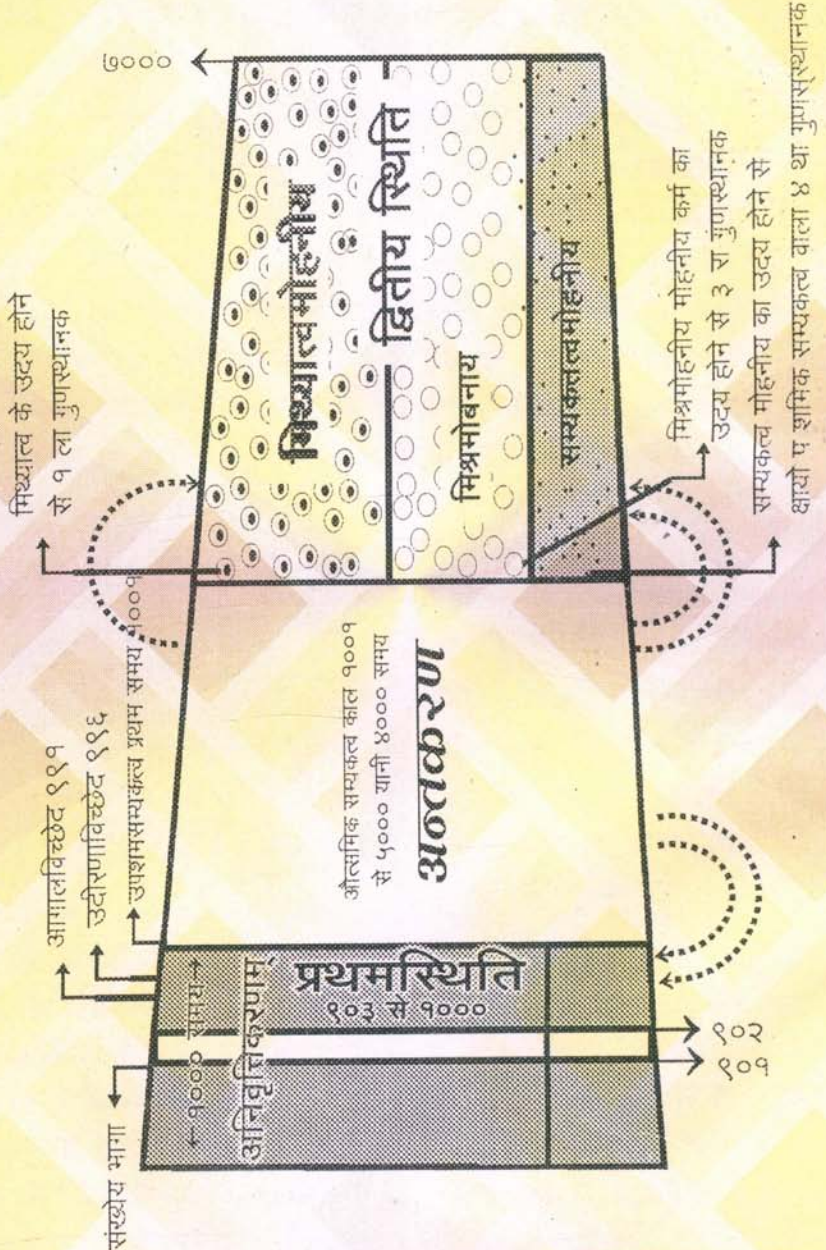
की गांठ का भेदन हो जाता है । अर्थात् राग द्वेष के अति तीव्र परिणाम का हास हो जाता है । इसे ग्रंथिभेद यानी गांठ का भेदन कहते हैं । इसलिये अब आगे उसकी सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की कूच चालू रहती हैं। अपूर्वकरण के बाद जीव अनिवृत्तिकरण प्राप्त करता है ।

३ अनिवृत्तिकरण :- अपूर्वकरण में शुभ अध्यवसायों से यद्यपि स्थितिघात आदि होते थे, फिर भी वहां विवक्षित एक समय में अनेक जीवों की अपेक्षा से उन अध्यवसायों में भिन्नता थी । किन्तु अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में भूतकाल में जितने जीव आये, वर्तमान में आ रहे हैं, और भविष्य में जितने आयेंगे, उन सब के अध्यवसाय समान ही होते हैं । किसी भी प्रकार का फर्क नहीं रहता । इस प्रकार इस करण के अंतिम समय तक जानना । किन्तु पूर्व पूर्व समय से उत्तरोत्तर समय में अध्यवसाय अनन्तगुण विशुद्ध होते हैं । इस करण की शाब्दिक व्युत्पत्ति ही ऐसी है कि-निवृत्ति यानी अध्यवसायों की भिन्नता, जिस करण में न हो, उसे अनिवृत्तिकरण कहते हैं । अपूर्वकरण की तरह अनिवृत्तिकरण में भी स्थितिघात आदि होते हैं ।

अनिवृत्तिकरण में मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का उदय अत्यन्त मन्द रसवाला होता रहता है । किन्तु सम्यग्दर्शन पाने पर तो मिथ्यात्व मोहनीय का उदय नहीं रहता । इसलिये उसकी सफाई का प्रारंभ इस करण में करता है । वह कब व कैसे करता है ? यह आपको अब समझा रहे हैं ।

अन्तरकरण - अनिवृत्तिकरण काल के संख्यातवें बहुत भाग व्यतीत होने पर एक स्थितिघात काल यानी अंतरकरण क्रियाकाल में अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय के बाद के अन्तर्मुहूर्त में रहे हुए मिथ्यात्व के कर्म प्रदेशों का सफाया कर लेता है यानी बीच में अन्तर्मुहूर्त जितनी स्थिति को रिक्त बना लेता है । वह उन प्रदेशों को प्रथम स्थिति यानी अन्तरकरण के नीचे की स्थिति

में व द्वितीय स्थिति यानी अन्तरकरण के ऊपर की स्थिति में डाल देता है जिससे अनिवृत्तिकरण का पूर्णाहृति के बाद उसे मिथ्यात्व के कर्म प्रदेशों का अनुभव करना न पड़े ।



असत्कल्पना - ऊपर के वर्णन को ही कल्पना से समझा रहे है । कल्पना कीजिये कि अनिवृत्तिकरण का काल १००० समय (वास्तव में असंख्यात समय) १ स्थितिघात काल या अंतरकरण क्रियाकाल = २ समय, अन्तरकरण यानी बीच का अन्तर्मुहूर्त का काल = १००१ से ५००० समय तक । आवलिका = ५ समय । असंख्यात = १० .

अनिवृत्तिकरण के संख्यातवें बहुत भाग यानी कल्पना से १ले से ९०० वें समय व्यतीत होने पर ९०१ वें से ९०२ वें समय तक = २ समय में स्थितिघात यानी अंतरकरण क्रियाकाल में अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय के बाद की अन्तर्मुहूर्त स्थिति को रिक्त कर लेता है । उन प्रदेशों को प्रथमस्थिति यानी अन्तरकरण के नीचे की स्थिति कल्पना से ९०३ वें समय से १००० वें समय तक प्रथमस्थिति व द्वितीयस्थिति यानी ५००० वें समय के ऊपर की स्थिति में ५००१ से ७००० वें समय में डालता हैं । जिससे अनिवृत्तिकरण के बाद यानी १००० समय के बाद उसे १००१ वें समय से ५००० वें समय तक उस जीव को मिथ्यात्व के कर्म प्रदेशों का अनुभव करना नहीं पडेगा । क्योंकि जीव वहां के कर्मप्रदेश पहले ही खाली कर चुका हैं।

इस प्रकार ९०३ वें समय से १००० समय तक जो मिथ्यात्वमोहनीय कर्म की स्थिति रहती है, वह प्रथम कहलाती है । और ५००१ वें समय से लगाकर ऊपर की ७००० वें समय तक स्थिति द्वितीय स्थिति कहलाती है । उसके बाद प्रथम स्थिति का अनुभव करता हुआ जीव आगे बढ़ता है । जब २ आवलिका शेष रहती है अर्थात् ९९० समय व्यतीत हो जाते हैं, उसके बाद आगाल विच्छेद होता है। आगाल = दूसरी स्थिति में से प्रथम स्थिति में मिथ्यात्व के प्रदेश को लाकर मिलाना, आगाल कहलाता है । ९९१ वें समय से वह रुक जाता है । जब १ आवलिका शेष रहती हैं, तब उदीरणा विच्छेद होती है । उदीरणा यानी मिथ्यात्व कर्म के जो प्रदेश उदय में स्वभावतः नहीं आये, उन्हें आत्मा अपने प्रयत्न विशेष से उदय में लाता है । वह उदीरणा कहलाती है ९९५ वें समय तक रहती है । अब ९९६ वें समय से वह रुक जाती है ।

उसके बाद क्रमशः मिथ्यात्व के उदय का अनुभव करती हुई आत्मा जब १००० वें समय पर पहुंचती है। तब सम्यग्दर्शन पाने की पूर्ण तैयारी में होती है। अर्थात् मिथ्यात्व के उदय के अन्तिम समय में यानी आत्मा अनिवृत्तिकरण के चरम समय में पहुंचती है, तब उसके अध्यक्षसाय इतने जबरदस्त विशुद्ध बनते हैं, जिनके कारण सत्ता में पड़े हुए कर्मों के ऊपर कठोर प्रहार करती है, जिससे मिथ्यात्व के छक्के छुटने लगते हैं और उसका रस खत्म होने लगता है। कई प्रदेश तो नीरस जैसे बन जाते हैं। कई अर्धशुद्ध बनते हैं, कई अशुद्ध ही रहते हैं।

त्रिपुंज :- मिथ्यात्व मोहनीय के कर्म प्रदेशों का समूह (पुंज) एक था। अब जीव विशुद्धि से उसके ३ पुंज (विभाग) बना देता है, उसे त्रिपुंज कहते हैं।

- (१) विशुद्धि से शुद्ध बने हुए प्रदेश पुंज सम्यक्त्व मोहनीय कहलाता है।
- (२) अर्धशुद्ध बना हुआ प्रदेश पुंज मिश्रमोहनीय पुंज कहलाता है। और
- (३) अशुद्ध ही रहा हुआ प्रदेश पुंज मिथ्यात्वमोहनीय कहलाता है।

उसके बाद १००१ वें समय में जीव सम्यग्दर्शन पाता है। जैसे कोई व्यक्ति घोर अंधकार से छुट कर जब सूर्य के प्रकाश को पाता है या बन्धनों से मुक्त बन कर स्वतंत्रता को प्राप्त करता है, इसी तरह भयंकर रागद्वेषादि बन्धनों से मुक्त बना हुआ जीव आनन्द की अनुभूति करता है। क्योंकि उस समय अनन्तानुबन्धि क्रोध - मान-माया-लोभ सभी उपशान्त हो जाते हैं। यह औपशमिक सम्यक्त्व कहलाता है।

अन्य सम्यक्त्व :- औपशमिक सम्यक्त्व के दौरान ६ आवलिका शेष रहने पर अनन्तानुबन्धि कषाय का उदय होने पर जीव सास्वादन सम्यक्त्व को प्राप्त करता है। औपशमिक सम्यक्त्व के बाद सम्यक्त्व मोहनीय का उदय होने से जीव क्षयोपशम सम्यक्त्व पाता है। कोई क्षयोपशम सम्यक्त्व वाला जीव पुरुषार्थ कर अनन्तानुबन्धी कषाय व क्रमशः मिथ्यात्व - मिश्र - सम्यक्त्व मोहनीय ये तीन मोहनीय क्षय करके क्षायिक सम्यक्त्व पाता है।

औपशमिक सम्यक्त्व के बाद मिश्र मोहनीय का उदय होने से

तीसरे गुणस्थान पर व मिथ्यात्व का उदय होने से पुनः जीव पहले मिथ्यात्व गुणस्थानक पर चला जाता है ।

औपशमिक सम्यग्दर्शन पाने के बाद आत्मा पुनः मिथ्यात्व में चली जाती है । तो भी वह देशोन अर्धपुद्गल परावर्तन में अवश्य मोक्ष में जाती है । इसलिये अेक किसान को उपदेश देकर गौतमस्वामीजी ने दीक्षा दी । उसके बाद उन्होंने कहा कि अब हम अपने गुरु महाराज के पास जा रहे हैं । जो मेरे से भी महान हैं । इस प्रकार उसके दिल में परम गुरु भगवान के प्रति अहोभाव खुब जगाया । इससे उसने तीन करण करके सम्यक्त्व पा लिया । परंतु समवसरण को देख कर उसे भगवान महावीर स्वामी के प्रति द्वेष जगा, वह गौतमस्वामीजी को रजोहरण देकर के चला गया । भगवान ने कहा कि अरे गौतम ! खेद मत कर, जो पाने जैसा सम्यग्दर्शन था, वह उसने पा लिया है । उसका जीवन सफल हो गया है । हम भी देव गुरु पर अहोभाव पैदा करके सम्यग्दर्शन पाकर मोक्ष निश्चित करें ।

१४ तप के कितने भेद होते हैं ।

अनादिकाल से आत्मा के ऊपर कर्म चिपके हुए है । उनका नाश तप से ही होता है । जैसे अशुद्ध सोने को अग्नि से तपाया जाता है, तब अशुद्ध तत्व जल कर भस्म हो जाते हैं । इसी प्रकार तप रूपी अग्नि से अशुद्ध आत्मा तपाया जाये, तो कर्म रूपी अशुद्ध तत्व नष्ट होकर शुद्ध आत्मा निखर कर देदीप्यमान प्रकट होती है । इसलिये कहा है कि "तपसा निर्जरा" तप से कर्म की निर्जरा होती है अर्थात् कर्म नष्ट होते हैं ।

तप के दो भेद होते हैं । (१) बाह्य तप व (२) अभ्यन्तर तप ।

(१) बाह्यतप :- बाहर से कष्ट रूप दिखे या जो बाहर के लोगों में प्रसिद्ध हो, उसके ६ भेद होते हैं ।

- (१) **अनशन :-** आहार का त्याग करना, जैसे कि उपवास, एकाशना, आयंबिल, चोविहार, तिविहार करना आदि, जैसे धन्ना अनागार।
- (२) **ऊनोदरिका :-** भोजन के समय दो चार ग्रास (कवा) कम खाने से यह तप होता है ।
- (३) **वृत्तिसंक्षेप :-** भोजन आदि के उपयोग में आने वाले द्रव्यों का संकोच करने से यह तप होता है, जैसे कि इतने समय तक इतने क्षेत्र में इतनी से अधिक या अमुक वस्तु नहीं खाना ।
- (४) **रसत्याग :** (१) दूध (२) दही (३) घी (४) तेल (५) गुड व शक्कर (६) मिठाई, इन विगईयों में से किसी एक या सब का त्याग करना ।
- (५) **कायक्लेश :-** इच्छा पूर्वक लोच, उग्रविहार व अग्नि आदि के उपसर्गों को सहन करना, जैसे गजसुकुमाल मुनि ।
- (६) **संलीनता :-** शरीर के अवयव और इन्द्रिय तथा मन की अशुभ प्रवृत्तियों को रोक कर उन्हें अंकुश में रखना । जैसे दृढ प्रहारी ।

तप के कितने भेद होते हैं ?

६ बाह्य तप

अनशन

६ आभ्यन्तर तप



पू.मुनिश्रीगुणरत्नविजयजीम.सा.केसदुपदेशसेशाओगाजीदानाजी.तरवतगढ़द्वारा निर्मित.

(२) अभ्यंतर तप :- आंतरिक मलीन वृत्तियों को नष्ट करने के लिये किया जाये, वह अभ्यंतर तप कहलाता है। उसके ६ भेद होते हैं।

- (१) **प्रायश्चित्त :-** गलतियां करने के बाद चित्त को शुद्ध करने के लिये गुरु महाराज के पास अपनी गलतियों को प्रकट करना व उनके कहने के अनुसार तपश्चर्या वगैरह करना, वह प्रायश्चित्त तप कहलाता है। गुरु महाराज के पास प्रकट करने में कोई दम्भ या कपट यदी रक्खी जाये, तो प्रायश्चित्त शुद्ध नहीं होता है।
- (२) **विनय :-** गुरुजन की बाह्य सेवा, आन्तरिक प्रीति (हार्दिक प्रीति) प्रशंसा आदि विनय तप कहलाता है।
- (३) **वैयावच्च :-** आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, बीमार, नये मुनि आदि की सेवा करना, वैयावच्च तप कहलाता है।
- (४) **स्वाध्याय :-** इसके पांच प्रकार होते है। (१) वांचना : शास्त्र के सूत्र व अर्थ का अध्ययन करना व करवाना। (२) पृच्छना : शंकास्पद स्थानों को पूछना। (३) परावर्तना : पुनरावृत्ति करना। (४) अनुप्रेक्षा : सूत्र व अर्थ पर चिंतन करना। (५) धर्मकथा : धार्मिक कहानियां कहना।
- (५) **ध्यान :-** एक वस्तु पर योग की एकाग्रता व योग का निरोध करना ध्यान कहलाता है।

इसका विशेष वर्जन १५वें प्रकरण में किया जायेगा।

- (६) **उत्सर्ग :-** काया वगैरह का उत्सर्ग यानी त्याग। यह उत्सर्ग दो प्रकार का होता है। (१) द्रव्य उत्सर्ग व (२) भाव उत्सर्ग। (१) द्रव्य उत्सर्ग के ४ भेद होते है।
- (i) **कायाकाउत्सर्ग :-** शरीर की क्रिया का त्याग करना कार्योत्सर्ग केहलाता है। संपूर्ण काया यानी औदारिक, तैजस व कार्मण सभी शरीर के प्रवृत्ति का त्याग चौदहवें गुणस्थानक पर होता है। उस वक्त व्युपरत क्रिया अनुवृत्ति शुक्ल ध्यान होता है। औदारिक शरीर की बादर प्रवृत्ति का त्याग तेरहवें गुणस्थानक में होता है। उस वक्त सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती ध्यान होता है। शेष गुणस्थानकों में कुछ समय के लिये देहाध्यास छोडने से औदारिक काया की

सामान्य प्रवृत्ति का त्याग होता है। जैसे अनशन करना व नवकार मंत्र लोगस्स वगैरह गिनना कार्योत्सर्ग तप कहलाता है।

- (ii) **गण उत्सर्ग** - गच्छ का त्याग कर जिनकल्प आदि का स्वीकार करना।
- (iii) **उपधि उत्सर्ग** - जिन कल्प स्वीकार करने पर सर्वज्ञ की आज्ञा के अनुसार उपधि यानी वस्त्र, पात्र आदि का त्याग करना।
- (iv) **अशुद्ध आहार जल उत्सर्ग** :- दोषित आहार व पांणी का त्याग करना। शुद्ध आहार मिलने पर दोषित आहार-पानी की पारिष्ठापना विधि अशुद्ध आहार जल उत्सर्ग कहलाता है।

(2) **भाव उत्सर्ग** :- इसके ३ भेद होते हैं।

- (i) **कषाय उत्सर्ग** :- क्रोध आदि कषाय का त्याग करना।
- (ii) **भव उत्सर्ग** :- भव के कारण रूप मिथ्यात्व वगैरह बंधहेतुओ का त्याग करना।
- (iii) **कर्म उत्सर्ग** :- ज्ञानवर्षण आदि कर्मों का त्याग करना। १ ले गुणस्थानक से १४ वें गुणस्थानक तक यह होता है।

काया को स्थिर करके वाणी में मौन रखकर मन को शुभध्यान में जोडना यह सामान्य से कार्योत्सर्ग कहलाता है। ज्यादातर कार्योत्सर्ग खड़े खड़े किया जाता है। इस तप से भी कर्मों का नाश होता है।

(१५) ध्यान के कितने भेद होते हैं।

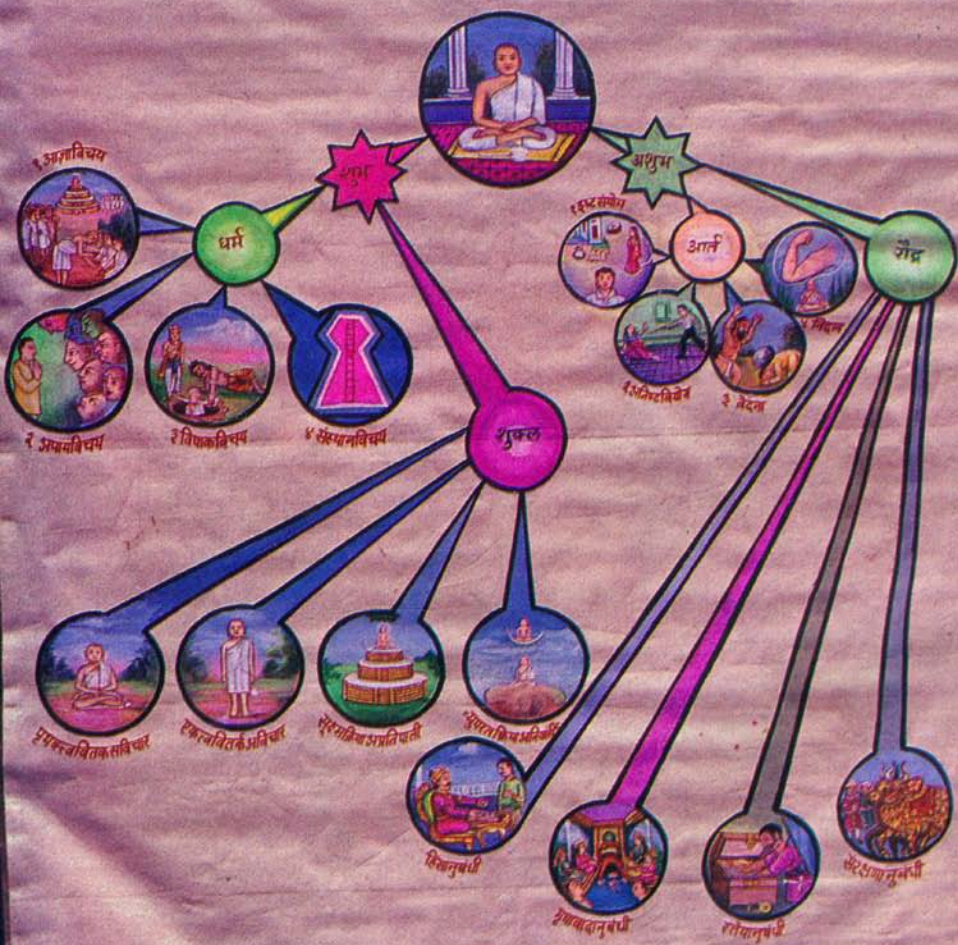
तप के १२ प्रकारों का वर्णन कर दिया है। उन सब में आन्तरिक तप रूप ध्यान का विशेष महत्व है। केवलज्ञान और मोक्ष का अनन्तर कारण ध्यान है। इसलिये पूज्य वीरविजयजी महाराज ने कहा है कि

''तस रक्षक जिन पलटायो, मोहराय जाअे भाग्यो।

ध्यान केसरीया केवलवरिया, वसंत अनंत गुण गाय ॥''

अेक वस्तु पर मन स्थिर होना ध्यान कहलाता है। उसके दो भेद

ध्यान के कितने भेद होते हैं?



पू. मन्त्री गुणरत्नविजयजी म. के सदुपदेश से रा.हजारीमलजी पनाजी हाडा तरकतगढ़ वाली द्वारा निर्मित।

होते हैं । (१) शुभ व (२) अशुभ ।

शुभध्यान :- देव, गुरु, भगवान की वाणी, आत्मा आदि पर मन स्थिर बनता है, तब शुभ ध्यान कहलाता है ।

अशुभध्यान :- कुदेव, कुगुरु, अधर्म जडद्रव्य आदि पर मन स्थिर बनता है । तब अशुभ-ध्यान कहलाता है । शुभ ध्यान कर्म का नाश करता है व पुण्यकर्म का उपार्जन करवाता है । अशुभ ध्यान पाप कर्म का बन्ध करवाता है ।

शुभ ध्यान के २ भेद होते हैं । १ धर्मध्यान व २ शुक्ल ध्यान

(१) धर्मध्यान के ४ भेद

(१) **आज्ञाविचय :-** इस प्रकार के हेतु तर्क आदि होते हुए भी अतीन्द्रिय पदार्थ, आत्मा, नरक व देवलोक, पुण्य, पाप, वीतराग देव आदि व मोक्ष व गैरह को हम देख नहीं सकते, किन्तु जिनेश्वर देव की आज्ञा = वाणी से उसका ज्ञान होता है और उसके अनुसार चलने से हमें मोक्ष की प्राप्ति होती है । हमारा कितना भाग्य का उदय है कि हमें श्रेष्ठ आज्ञा मिली है । इस प्रकार चिन्तन करने से आज्ञा विचय का धर्मध्यान होता है । जिस प्रकार गौतम स्वामी के १५०० साधु में से भगवान की वाणी - आज्ञा का चिन्तन करने से ५०० साधुओं ने भोजन करते हुए, ५०० साधुओं ने वाणी सुनते हुए - व ५०० साधुओं ने प्रभु को देखते हुए केवलज्ञान प्राप्त कर लिया ।

(२) **अपायविचय :-** राग, द्वेष, क्रोध, मान आदि कितने भयंकर शत्रु है ? उनसे आत्मा का कितना भयंकर नुकसान होता है ? इत्यादि चिन्तन करने से अपायविचय नाम का धर्मध्यान होता है । गुणसागर व शादी के लिये जाने वाले राजकुमार आदि ने अपायविचय ध्यान से केवलज्ञान प्राप्त किया ।

(३) **विपाकविचय :-** कर्म के मूल ८ भेद हैं उसके उत्तर भेद १२० है, उसके फल को जीव ही भुगतता है, इस प्रकार का चिन्तन करना

विपाकविचय नाम का धर्मध्यान कहलाता है । जैसे झांझरियां ऋषि ।

- (४) **संस्थानविचय :-** १४ राजलोक की आकृति, ऊर्ध्व, अधोलोक व मध्यलोक, देवलोक व नरक आदि का चिंतन करना संस्थानविचय नाम का धर्मध्यान कहलाता है ।

(२) शुक्लध्यान के ४ भेद

- (१) **पृथक्त्व वितर्क सविचार :-** अन्यान्य पदार्थ में १४ पूर्वज्ञान के अनुसार चिन्तन में संक्रमण जिस ध्यान से होता है, उसे पृथक्त्व वितर्क सविचार कहते हैं ।
- (२) **एकत्ववितर्क अविचार :-** जिस ध्यान में एक पदार्थ या एक पर्याय से दूसरे पर्याय या पदार्थ पर संचरण नहीं होता व एक पर्याय या पदार्थ के ऊपर और एक योग से १४ पूर्वज्ञान के अनुसार चिंतन होता है, उसे एकत्ववितर्क अविचार ध्यान कहते हैं ।
- (३) **सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाती :-** मोक्ष जाने के पहले सूक्ष्म मन, वचन, काया की प्रवृत्तियाँ जिसमें होती है । १३ वें गुणस्थानक के अन्त में यह ध्यान होता है ।
- (४) **व्युपरत क्रिया अनिवृत्ति :-** सूक्ष्म योग भी रुक जाने से चौदहवें गुणस्थानक में 'अ इ उ ऋ लृ इन पांच ह्रस्व स्वर को मध्यम गति से उच्चारण करने में जितना समय लगता है, उतने समय तक यह ध्यान रहता है। इसका नाम व्युपरत क्रिया अनिवृत्ति है ।

अशुभ ध्यान :- अशुभ ध्यान से पाप कर्म का बंध होता है । इसके दो भेद हैं । (१) आर्तध्यान (२) रौद्र ध्यान

(१) आर्तध्यान के चार भेद :

- (१) **इष्ट संयोग आर्तध्यान :-** इष्ट संयोग यानी अमुक वस्तु मिले व

मिली हुई वस्तु बनी रहे, इष्ट वस्तु पृथक् न हो जाये इत्यादि का चिन्तन करना इष्ट संयोग आर्तध्यान कहलाता है। जैसे सुकोशल की माता सहदेवी।

- (२) **अनिष्ट वियोग :-** अनिष्ट वस्तु का वियोग कैसे हो या अनिष्ट आये नहीं, इत्यादि का चिंतन करना। जैसे अग्निशिखा सर्प बनी।
- (३) **वेदना आर्तध्यान :-** व्याधि, दुःख आदि के नाश के उपाय का चिंतन व हाय हाय करना। जैसे मरुभूति ने कमठ के द्वारा शिला गिराते समय किया था, तो वह हाथी बना।
- (४) **निदान आर्तध्यान :-** धर्म की आराधना के बदले में भौतिक सुख की प्राप्ति का चिंतन करना। भगवान महावीर स्वामी के जीव विश्व = भूति ने १६ वें भव में शारीरिक बल का निदान किया था। इसलिए १९ वें भव में ७ वीं नरक में गये थे।

(२) रौद्र ध्यान के ४ भेद

- (१) **हिंसानुबंधि रौद्रध्यान :-** हिंसा का तीव्र चिन्तन करना। जैसे ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती।
- (२) **मृषावादानुबंधि रौद्रध्यान :-** झूठ का तीव्र चिंतन करने से यह ध्यान होता है। जैसे वसुराजा।
- (३) **स्तेयानुबन्धि रौद्रध्यान :-** चोरी का तीव्र चिन्तन करने से यह रौद्रध्यान होता है। जैसे कई चोर नरक में गये।
- (४) **संरक्षणानुबंधि रौद्रध्यान :-** धन आदि वस्तुओं के लिये क्रूर चिन्तन करना। जैसे मम्मण शेट।

ध्यान का फल :- (१) रौद्रध्यान से नरकगति मिलती है। (२) आर्तध्यान से तिर्यचगति मिलती है। (३) धर्मध्यान से मनुष्यगति मिलती है। (४) शुक्ल ध्यान से देवगति व मोक्ष मिलता है।

१६ जैन दर्शन ने परमाणु कितने सूक्ष्म बताये हैं

यहां तक ६ द्रव्यों में से हम जीवादि ५ द्रव्यों का वर्णन कर चुके हैं। अब हम पुद्गलास्तिकाय पुद्गल का वर्णन कर रहे हैं। पुद्गल का छोटे से छोटा विभाग परमाणु कहलाता है।

आधुनिक वैज्ञानिकों की मान्यता है कि परमाणु की प्रथम शोध डेमीप्रेटस द्वारा ईस्वी सन् से पूर्व ४६० वर्ष में हुई थी। उसके बाद उसमें विशेष संशोधन चलते रहे। अब वैज्ञानिक इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि पानी की १ बून्द में ६ के ऊपर २१ बिंदियाँ लगा दो, इतने परमाणु हैं और यदि उन्हें अंगूर जितने उनको बनाया जाये, तो पृथिवी पर ७५ फीट मोटी परत बन जाये। भगवान महावीर ने २५५० वर्ष व असंख्यात वर्ष पहले बताया है कि वैज्ञानिक के ऐसे अेक अेक व्यवहारिक परमाणु में अनन्त परमाणु है। उनके पास लायब्रेरी व लेबोरेट्री नहीं थी, फिर भी अपनी ज्ञान शक्ति से उन्होंने ये सूक्ष्म बातें बताई हैं।

वास्तव में परमाणु का अर्थ होता है कि भौतिक पदार्थ का छोटे से छोटा भाग, जिसका किसी भी प्रकार से यानी केवलज्ञान से भी विभाग न हो यानी अविभाज्य अंश। इस प्रकार परमाणु की व्याख्या है। आज के वैज्ञानिकों ने तो उनके द्वारा माने गये अणु (Atom) का भी विभाजन बताया है। जैसे कि हाइड्रोजन के अणु में १ प्रोटोन, १ न्यूट्रोन और उसकी परिधि में चारों ओर घूमता हुआ १ इलेक्ट्रोन है। हिलीयम के १ अणु में दो प्रोटोन, दो न्यूट्रोन व दो इलेक्ट्रोन बताये हैं। इसी तरह कार्बन अणु में ६ प्रोटोन, ६ न्यूट्रोन, ६ इलेक्ट्रोन बताये गये हैं। इसलिये रिडर डायजेस्ट में कहा है कि An atom of any substance is the smallest piece which is characteristic of that substance and of nothing else. But all atoms, are put together from the same smaller fundamental parts of these three are most important, they are protons (electrically

जैन दर्शन ने परमाणु आदिकितने सूक्ष्म बताया है?

भगवान महावीर जगैरह अनंत तीर्थंकरों के कर्ता हैं।



उस एक एक स्कन्ध में अनंत परमाणु बताये हैं।

मिथी के एक एक कण में असंख्य जीव हो जाते हैं।

आधुनिक विज्ञान यह कहता है।

एक घन ईंच क्षेत्र फूल वाले वायु में -
 ४९५,०००,००,००,००,००,००,०००
 (४९५ बिलियन) स्कन्ध बताये हैं।



जगत्प्रति एक एक कण में असंख्य परमाणु बताये हैं।

उस एक एक आधुनिक परमाणु में वास्तविक अनंत परमाणु बताये हैं।

एक बिन्दु में विज्ञान ने
 ३६५४० चालते किलो
 नस और
 बताये हैं।

जर्मन विद्वान
 अन्ड्रे ने ३० ग्राम पानी
 में ३ अरब
 ३०० प्रति
 रफ्तार से ४०
 दिनो रहे उतने स्कन्ध (Molecules)
 कहे हैं।

विज्ञान ने पानी के एक चिन्म में
 ६००,००,००,००,००,००,००,०००
 (६१ बिलियन) परमाणु
 बताये हैं।

वैश्व एक एक स्कन्ध में अनंत परमाणु बताये हैं।

positive), neutrons (electrically neutral) and electrons (electrically negative). The nucleus of hydrogen for example has one proton, the nucleus helium has two protons (and usually two neutrons), and so on up the ladder of nature's 100 kinds of atoms. (Reader's Digest).

इसलिये हम आधुनिक वैज्ञानिक अणु को ब्यवहारिक परमाणु कहते हैं। क्योंकि यह ब्यवहारिक परमाणु तात्विक दृष्टि से तो अनन्त परमाणुओं का जत्था है यानी स्कन्ध है। जैन दर्शन ने परमाणु की व्याख्या की है कि केवलज्ञानी दृष्टि से भौतिक पदार्थ का छोटे से छोटा अंश, जिसके दो विभाग न हो सके, वह परमाणु कहलाता है। ऐसे दो परमाणु जुडते है, तब द्विप्रदेशी स्कन्ध कहा जाता हैं। तीन परमाणु जुडते हैं, तबत्रि प्रदेशी स्कन्ध कहा जाता है। इसी प्रकार संख्यात प्रदेशी, असंख्यात प्रदेशी व अनन्त प्रदेशी स्कन्ध बनते हैं। ऐसे अनन्त प्रदेशी स्कन्ध जैन दर्शन के अनुसार अेक प्रोटोन, इलेक्ट्रोन व न्यूट्रोन में होते हैं। इसलिये वैज्ञानिक परमाणु में जैन दर्शन के अनन्त परमाणु होते हैं।

इसी प्रकार जर्मन विद्वान अेन्ड्रूड ने २९ ग्राम पानी में ३ अरब मनुष्य प्रति मिनट ३०० की रफतार से ४० वर्ष तक गिनते रहे, उतने मोलक्यूल्स (परमाणु का जत्था = स्कन्ध) कहे हैं। जैन दर्शन कहता है कि उस अेक अेक मोलेक्यूल्स में अनन्त परमाणु होते हैं।

अेक घन इंच वायु में ४४२४ के ऊपर १७ बिंदियाँ ४४२४ ०००००००००००००००००००००० लगा दी जाए, उतने स्कन्ध होते हैं। जैन दर्शन कहता है, उतने अेक स्कन्ध में अनन्त परमाणु होते हैं।

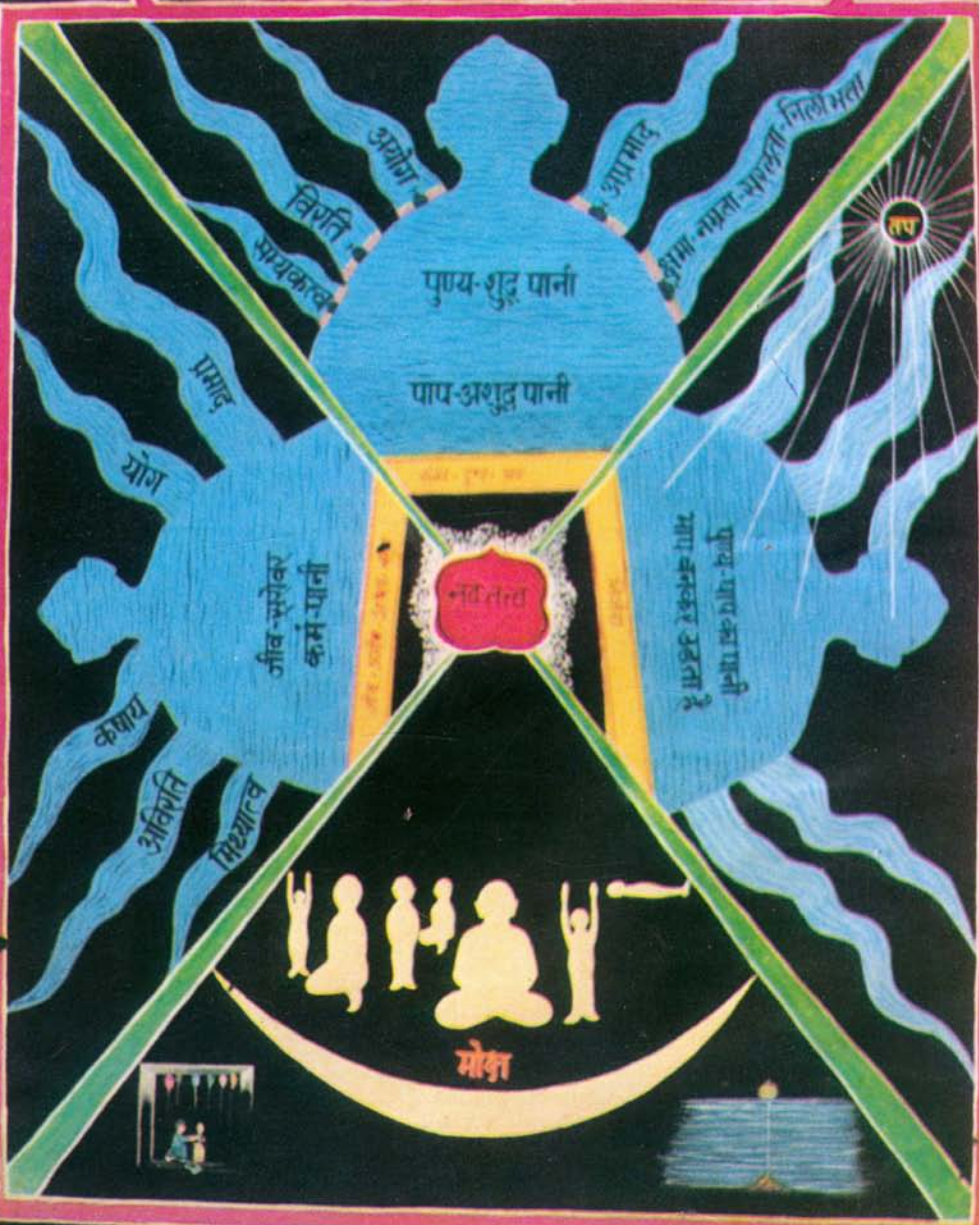
हम अेक बार श्वास लेते हैं। उसमें १ के ऊपर बाईस बिंदियाँ १ ०००००००००००००००००००००००००००० लगावे, उतने कार्बन अणु-होते हैं। जैन दर्शन से उसके अेक अणु में अनन्त परमाणु होते हैं।

१७. नौ तत्त्व

जैनदर्शन में ९ तत्त्व माने गये हैं। वे तत्त्व सदा काल के लिए विश्व में होते हैं। जो नौ तत्त्वों को जानता है, वही वास्तव में सम्यग्दृष्टि यानी जैन है अथवा जो अज्ञानता की प्रबलता के कारण उन्हें विशेष प्रकार से नहीं भी ज्ञान सके, फिर भी भाव से उन पर श्रद्धा रखने वाला भी सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। हमारे में जब समझने का सामर्थ्य है, तो हमें इन नौ तत्त्वों को समझने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। जिससे सही अर्थ में हम अपने आपको सम्यग्दृष्टि मान सकें। इसलिए नौ तत्त्व जानना आवश्यक ही नहीं, बल्कि अति आवश्यक है। उनके नाम व व्याख्या निम्न प्रकार है।

- (१) **जीव** :- जिसका लक्षण चेतना (चैतन्य) है, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुण जिसमें रहते हैं।
- (२) **अजीव** :- चैतन्य से शून्य-जड़ जैसे के कपड़े, मेज वगैरह पुद्गल, आकाशास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय व काल
- (३) **पुण्य** :- जिससे जीव सुख व यश वगैरह पाता है।
- (४) **पाप** :- जिससे जीव दुःख व अपयश वगैरह पाता है।
- (५) **आश्रव** :- आश्रवति कर्म अनेनेति = जिससे कर्म आते हैं, वे (१) मिथ्यात्व (२) अविरति = हिंसादि पाप करने की छूट (३) प्रमाद, (४) क्रोधादि कषाय (५) योग = मन वचन काया की अशुभ प्रवृत्तियां ये पांच आश्रव है।
- (६) **संवर** :- संवृणोति कर्म अनेनेति संवर :, आते हुए कर्म जिससे रुके, उसे संवर कहते हैं, जैसे कि सम्यग्दर्शन, सामायिक, पौषध, चारित्र वगैरह।
- (७) **निर्जरा** :- कर्म का झारना = नाश होना = निर्जरा कहलाता है, निर्जरा के साधन उपवास आदि १२ प्रकार के तप को भी उपचार से निर्जरा कहा जाता है।
- (८) **बन्ध-जीव** के साथ कर्म का क्षीरनीर वद् सम्बन्ध बन्ध कहलाता है।
- (९) **मोक्ष** - सब कर्म नष्ट हो जाना, मोक्ष कहलाता है।

नव तत्व



पूज्य मुनिश्री गुणस्त्नविजयजी म. के सदुपदेश से रोहीडा निवासी श. केशरिमलजी दलीचंदजी के उजमणा के निर्मित
से निर्मित

काल्पनिक चित्र से नौ तत्त्व की जानकारी

- (१) जीव तत्त्व :- जीव एक सरोवर है ।
- (२) अजीव तत्त्व : जीव रूपी सरोवर में जड रूपी कर्म का कचरा भर गया है । कर्म अजीव है । जो पुद्गल द्रव्य का एक विभाग है । अजीव तत्त्व में पुद्गल आदि ५ द्रव्य होते हैं ।
- (३) पुण्य तत्त्व :- उसमें अच्छे रंग वाला पानी पुण्य कर्म है ।
- (४) पाप तत्त्व :- उसमें खराब रंग वाला पानी पाप कर्म है ।
- (५) आश्रव तत्त्व :- दोनों प्रकार का कर्म पानी जिन नालियों (मिथ्यात्व, हिंसादि) से आता है, वे आश्रव हैं ।
- (६) संवर तत्त्व :- उन नालियों को बन्द करने वाले सम्यदर्शन, संयम आदि संवर किवाड है ।
- (७) निर्जरा तत्त्व :- कर्म रूपी पानी को तप रूपी सूर्य का ताप लगने से वह भाप बनकर नष्ट होता है । उसे निर्जरा कहते हैं ।
- (८) बन्ध तत्त्व = पुराने कर्म रूपी पानी के साथ नया कर्म रूपी पानी जीव रूपी सरोवर में मिल-घुल जाता है, उसे बन्ध कहते हैं ।
- (९) मोक्ष तत्त्व = सम्पूर्ण कर्म रूपी पानी सूख जाता है, अर्थात् नष्ट हो जाता है । उसे मोक्ष कहते हैं ।

उपनय :- (१) जीव रूपी सरोवर है । उसमें, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख आदि अनन्तगुण रूपी निर्मल पानी है । (२) अनादिकाल से उसमें कर्म रूपी कचरा भरा हुआ है । (३) इतना ही नहीं, मिथ्यात्व, हिंसा, कषाय अशुभ योग रूपी नाली द्वारा (४) पाप कर्म रूपी खराब (गंदा) पानी आ रहा है, एवं शुभयोग आदि से अच्छे (५) पुण्य अच्छे रंग का पानी आ रहा है (६) इन आश्रवों के रोकने वाले सम्यकत्व आदि संवर रूपी किवाड द्वारा पुण्य-पाप रूपी शुभाशुभ पानी आना बंद हो जाता है (७) जीव रूपी सरोवर में कर्मरूपी नया नया पानी भरता ही रहता है, वह कर्मबन्ध कहलाता है । वह प्रकृति, स्थिति, रस, प्रदेश

बन्ध के नाम से ४ प्रकार का हैं । (८) आत्मा रूपी सरोवर में इक्कठे हुए कर्म पानी को तप रूपी सूर्य भाप बना कर सूखाता है, वह निर्जरा कहलाती है । (९) अेक दिन सारा कर्म रूपी पानी सूख जाने से स्वच्छ निर्मल ज्ञान दर्शन चारित्र गुण प्रकट होते हैं, वही मोक्ष है । **“कृत्स्न कर्मक्षयो मोक्ष”** संपूर्ण कर्मों का क्षय ही मोक्ष है । मुक्त आत्मायें सिद्ध शिला के ऊपर सदा के लिये स्थिर हो जाती है । ऊपर लोक के अंतिम भाग में रुक जाती है । आत्मा का स्वभाव तुम्बड़े की तरह ऊपर जाने का है । पहले आत्मा रूपी तुम्बड़े पर कर्म रूपी मिट्टी लेपी हुई थी । इसलिये संसार रूपी सागर में नीचे, ऊपर, तिरच्छी अनेक गतियों में परिभ्रमण करती थी । जैसे किसी तुम्बड़े पर मिट्टी के थपेड़े लगाने से तुम्बड़ा पानी में नीचे, कभी थोडा ऊपर, फिर थोडा तिरछा, फिर नीचे ऐसे होता रहता है । मगर जब मिट्टी निकल जाती है । तब वह ऊपर आ जाता है । इस तरह आत्मा के ऊपर से कर्म की मिट्टी दूर हो जाती है, तो वह तुम्बड़े की तरह अपने स्वभाव से ऊपर आ जाती है । सभी मुक्त आत्मायें लोक के अग्रभाग को छुकर एक सम स्थिति में रहती है । क्योंकि अलोक में धर्मास्तिकाय नहीं होने से ऊंचे जाने की शक्ति होने पर भी ऊंची नहीं जाती । उनकी आत्मा अन्तिम २/३ शरीर के भाग में अपने प्रदेशों को संकुचित कर रहती है । ऊपर से सभी एक स्थिति में नीचे से विषम स्थिति में रहती है ।

इन नौ तत्त्वों में जीव और अजीव ज्ञेय तत्त्व है । ज्ञेय तत्त्व यानी ये दो तत्त्व जानने चाहिये । पाप, आश्रव व बंध, ये तीन हेय तत्त्व है । हेय तत्त्व यानी इन तीन का त्याग करना चाहिये । पुण्य, संवर, निर्जरा व मोक्ष ये चार उपादेय तत्त्व है । उपादेय तत्त्व यानी इन ४ तत्त्वों पर आदर रख कर यथासंभव कार्यान्वित करना चाहिये ।

ज्ञेय को जान कर, हेय को छोड कर, सर्वोत्कृष्ट उपादेय मोक्ष को प्राप्त करें । जहां से कभी वापस आना नहीं होता, जहां अन्तिम शरीर के २/३ भाग में आत्मप्रदेश अचल व अनन्त अब्याबाध सुख से समृद्ध है, जहां सादि अनन्तकाल तक एक रहना होता है । ऐसे मोक्ष को मैं व आप सभी आत्मा प्राप्त करें । यही शुभेच्छा ।

शास्त्रविरुद्ध कोई भी लिखा है, तो मिच्छामि दुक्कडं ।

ग्रंथभेद - प्रक्रिया

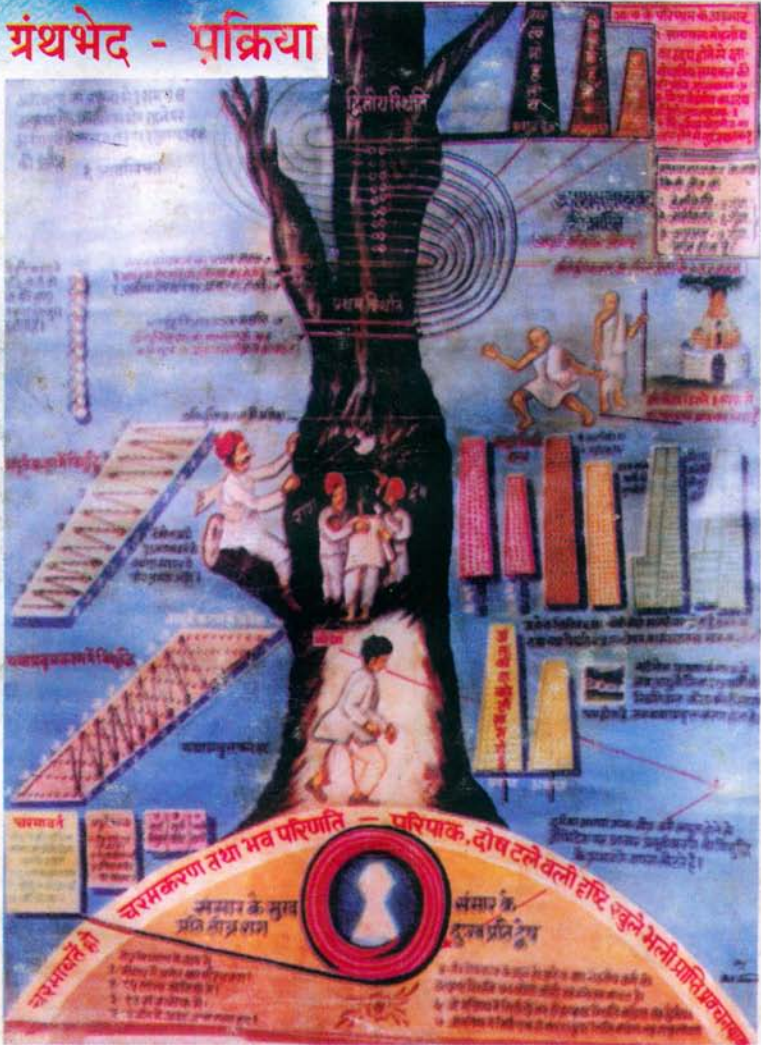


FIG : SIDDHACHAKRA GRAPHICS PH : 078-6620679